रजत शिखर

Rajat - Shikhar

Poetry

श्री सुमित्रानंदन पंत

Shree Sumetranandan Pa

pp 156

Price 5/-

Bharati Bhawan,
Prayag

ग्रन्थ-संख्या—१५५

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

प्रथम संस्करण
सं० २००८ वि०
मूल्य ५)

मुद्रक—
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, प्रयाग

विज्ञप्ति

रजत शिखर में मेरे छः काव्य रूपक संगृहीत हैं, जो आकाशवाणी से संक्षिप्त रूप में प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपकों में चौबीस मात्रा का अतुकांत रोला छंद प्रयुक्त हुआ है, जिसमें नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एवं तेरह ग्यारह के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ों पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अंत में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिकता के लिए अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। पद्य नाट्य में लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पढ़ते समय प्रत्येक चरण के अंत में यथेष्ट विराम दिया जाय। इति—

१५ जुलाई '५१]

श्री सुमित्रानंदन पंत

दीपक

प्रियवर
दिनकर को

अनुक्रम

रजत शिखर

रजत शिखर मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। इस काव्य रूपक में जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। मानव मन के विकास की वर्तमान स्थिति में ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्त्री पुरुष स्वर

युवक साधक

युवती

मनोविश्लेषक

राजनीतिज्ञ

विस्थापित

(प्राणोन्मादन वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

वन मर्मर की हरी भरी घाटी यह सुंदर,
कल कल बहती जहाँ मुखर प्राणों की सरिता
आवेशों के फेनिल मानस पुलिन डुबा कर!
यहाँ प्रसारों में हँसता जीवन स्वर्णातप
शोभा के ताने बाने में सतरँग गुंफित,
मृगजल सी शत छाया इच्छाएँ लहरातीं
निःस्वर नूपुर बजा बीथियों में ममता की!

यहाँ बनैले फूलों की मांसल सुगंध पी
मारुत उन्मद लोटा करता हरीतिमा के
घने उभारों में, गर्तों में, इंद्रिय मादन!
मुग्ध स्वर्ण प्रभ भृंग गूँजते वीरुध जग की
कुसुम योनियाँ चूम गंध रज, गर्भ दान दे!
यहाँ तितलियाँ रंग अंग भंगिमा दिखाती
वन अप्सरियों सी फिरतीं शोभा इंगित कर,

मौन ज्योतिरिंगण निशीथ के अंधकार में
चमक झमक उठते प्रकाश के संकेतों-से

स्त्री स्वर

नाम हीन आशाऽकांक्षाएँ यहाँ अतंद्रिल
इंद्रजाल बुनतीं अपलक स्वप्नों के मोहक :
अमिट लालसा तृष्णाओं की चल केंचुलियाँ
रेंगा करतीं गरल मदिर क्षण फन फैलाए !
यहाँ प्रीति ज्वाला, सुंदरता हाला पीकर
लिपटी रहतीं सघन मोह तम के कुंजों में :
और सुनहले रहस पंक में धँस जीवन के
मन के मुग्ध चरण बँध जाते अलस श्रांति में !

(आत्मोन्नयन सूचक वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

दूर वहाँ, उस पार, मर्मरित अंतरिक्ष के
ऊपर, नभ का नील चीरते, शुभ्र रजत के
शिखर दिखाई पड़ते जो स्थिर ज्योति ज्वार-से
तड़ित चकित जलदों के खुलते अंतराल से,—
मौन, अटल, उल्लंग, आत्म गरिमा में जागृत,
शाश्वत, अमर, असीम,—परम आनंद लोक-से,—
स्वर्ग क्षितिज को उठे धरा विश्वास स्तंभ-से—
जहाँ चेतना का प्रकाश हँसता दिग् विस्तृत,
स्वच्छ हिमानी सा शशि की किरणों से प्रहसित,
उज्वल, स्निग्ध, प्रशांत,—जिसे जगती का कल्मष
स्पर्श नहीं कर पाता तम तृष्णा के कर से:—

स्त्री स्वर

वहाँ पहुँचने को चिर व्यग्र, महत्त्वाकांक्षी,
एक युवक, जो रहता छाया की घाटी में,
जग जीवन के संघर्षण से श्रांत क्लांत हो,
सोच रहा, मैं कैसे प्राप्त करूँ महिमोज्वल
मानस की उस निभृत रुपहली ऊँचाई को,
जो निष्कंप शिखा सी उठ कर, महानील को
आलोकित करती अपने अंतः प्रकाश से !
जहाँ विचरते सुरगण गोपन सुख से प्रेरित
स्वप्नों की पगध्वनि से कंपित कर दिगंत को;
जहाँ प्रेरणाओं के स्वर्णिम मेघ बरसते
मर्म स्वरों की रजत फुहारों में अजस्र झर !

(वाद्य संगीत : आकाश गीत)

शुभ्र कांति रही बरस
शुभ्र शांति रही हरस,
शाश्वत शोभा असीम
दिशि पल से रही विहस !

गात गंधर्व अमर
झरते स्मित स्वर्णिम स्वर,
तन्मय तन मनस् प्राण
अकथित आनंद परस !

चेतना रही निहार
अपलक दृग आर पार,

जयति, सत्य ज्योति शिखर,
अंतः स्मित रहे विलस !
अमृत कलश चंद्र भाल,
विजित अचित् व्याल माल,
स्फुरित शीर्ष चेतनोर्मि,
जयति, शक्ति पुरुष स्ववश !

(तानपूरे के स्वर)

युवक

बरस रहा आत्मस्थ स्वरों का निःस्वर निर्झर
अधिमानस के नभ से, सुधा स्रवित कर अंतर,—
किन्तु हाय, मैं सौरभ मृग सा गंध अंध हो
भटक रहा प्राणों की इस मोहित घाटी में :
जिसकी छलना के दिङ् मायावी प्रसार में
खो खो जाती मन की गति, चल इंद्रिय सुख के
पंखों में छटपटा, श्रांत श्लथ हो अतृप्ति से !

हँस हँस यौवन की सतरँग आशाऽकांक्षाएँ
इंद्रधनुष दीपित वाष्पों की भाव भूमि में
विवश मोह लेतीं मानस को, निज रोमांचित
रंग पाश में बाँध, लिपट कंटकित लता सी !
चारों ओर बिछे हैं मोहक जाल अगोचर
आवेशों की रत्नच्छायाओं के गुंफित;
कोयल मुखर स्वरों से मर्माहत करती उर,
फूल मौन छवि से मोहित कर लेता अंतर;

रूप हीन सौरभ अदृश्य मृदु रजत सूत्र से
खींच चेतना को कर देती व्याप्त बहिर्मुख ! —

हास अश्रु की घाटी यह : हँसमुख फूलों की
पलकों से झरते रहते मोती के आँसू :
धरती का चातक प्रेमी आकाश कुसुम का,
अंध चकोर अँगारे चुग निज तृषा बुझाता,
गंध मधुप गाता काँटों में फूल के लिए !!

(मनोमोहक वाद्य संगीत)

इच्छाओं की मर्म गुंजरित इस द्रोणी में
जब प्रवृत्ति पथ, रत्नखचित आकाश सेतु सा,
अपनी शत रंगों की छायाएँ बखेर कर
अपलक कर देता लोचन : मुग्धा चपलाएँ
स्मित कटाक्ष से पुलकित कर देतीं तन, चंचल
ज्वालाओं के स्पर्शों से प्राणों को उकसा :
शरद चाँदनी दुग्ध फेन सा कंपित उर ले
स्वप्नों की गुंजित चापों से निशा कक्ष को
मुखरित कर देती सहसा जब : नव वसंत श्री
फूलों के मृदु अवयव शोभा में लपेट कर
अँगड़ाई भरती, वन सौरभ की साँसों से
समुच्छ्वसित कर हृदय : और उन्मद स्वप्नों की
मोहकता से भरी नवल यौवन की अगणित
आशाऽकांक्षाएं हर लेतीं आत्मबोध को,—
तब, जाने, मानस में, नीरव ज्योति चरण धर,
स्नेह मधुरिमामयी कौन, नव उषा किरण सी,

करती सहज प्रवेश, हृदय में जगा अभीप्सा,—
मुग्ध, आत्म विस्मृत कर अंतर को क्षण भर में !
खुलता हो अंतरतम का चिर रुद्ध द्वार ज्यों
खुलता उर का रहस व्यथामय मर्म प्रीत व्रण
विद्रुम विगलित दिव्य मौन लालिमा लोक सा,
करुणा शीतल करता जो लालसा दाह को !

(करुण वाद्य संगीत)

कैसे मैं जीवन के रंजित कर्दम से उठ,
भाव तृषित मृग मरीचिका से मोह मुक्त हो,
आरोहण कर रजत चेतना सोपानों पर
पहुँचूं अंतर्मन की उस प्रज्वलित भूमि तक,
जिसके शांत शिखर मोहित करते भू का मन,
चिर हिल्लोलित मानस के हर्षातिरेक-से !

(द्विविधा सूचक वाद्य संगीत)

अह, फिर स्वर्ण रजत वाष्पों के सतरंगी पट
आच्छादित कर लेते अंतः शुभ्र शिखर को,—
चपलाओं के विभ्रम से कर चकित मनोदृग !
फिर फिर प्राणों की अभिलाषा कनक भुजग सी
लिपट, बाँध देती उत्सुक बढ़ते चरणों को !
हँसमुख गर्त निगल जाते उच्चाकांक्षा को,
अतल मग्न कर उर प्रांतर को अंधकार में !
धीरे धीरे झींगुर सी फिर रेंग कामना
जड़ विषाद को कँपा, जगाती सुख की तृष्णा,—
इस प्रकार नित चलता रहता जीवन अभिनय
और बदलते रहते चल पट छायातप के !

(कोयल की कूक)

लो, जीवन की नव मंजरित प्रथम वसंत सी
प्राण सखी आ रही इधर ही, राह भूल कर !
या गत स्मृतियों से प्रेरित हो ? कोयल उसका
अभिनंदन करता है उत्सुक मर्म कूक भर !
कुहू, कुहू,—लहरों-से उठते स्वरावेश में
मेरे प्राणों की उत्कंठा बरस रही है !

मेघों के अंबर में शशि की रजत तरी ज्यों
तिरती स्वप्नों से रँग रँग कर शिखर फेन के,
मेरे प्राणों में उतराती प्रेयसि की स्मृति
निज किशोर लीला का चंचल मुग्ध हास्य भर !
विरल जलद से स्वर्ण बिम्ब सा उसका स्पंदित
गौर वक्ष है सतत झलक उठता स्मृति पट में !
आज उतर आई वह ज्यों साभार धरा पर
नव मधु की इच्छाओं के पंखों में उड़ कर !

(दूर से प्रवाहित गीत के स्वर)

नव वसंत क्या लाया ?
प्राणों की घाटी में फिर
फूलों का पावक छाया !

सुन कोयल का दाहक कूजन
मधुपों का उन्मादक गुंजन,
स्वप्नों ने अंतर् मर्मर भर
कैसा गीत जगाया !

रँग रँग की इच्छाएँ हँस हँस
मन को पागल करतीं बरबस,
पग पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया !

घिरते आज क्षितिज में क्यों घन
सौरभ के, भावों के मादन,
चल वसंत के नभ में मंथर
सावन क्यों घिर आया

अधरों में नव कलियों की स्मित,
पलकों में स्मृति की झर अविदित,
मन समीर के पंखों में,
उर में समुद्र लहराया ?

(युवती का प्रवेश)

युवती

नव वसंत का अभिवादन देने आई हूँ !

युवक

प्रणय मुखर कोयल को अपना दूत बना कर
स्वयं वसंत श्री आई है नव शोभा में
मेरी भग्न कुटी के चिर विस्मृत प्रांगण में !
स्वागत करता हूँ प्रिय ऋतुओं की रानी का !

युवती

पिक की वाक्पटुता से उपकृत है वसंत श्री !

युवक

तुम्हें ज्ञात है, मेरे जीवन के निकुंज में
तुम्हीं प्रथम मधुऋतु आई थीं, जब प्राणों के
पल्लव, मर्मर भर, स्वप्नों से सिहर उठे थे !
मदिरारुण लपटों में उर की आकांक्षाएँ
फूट पड़ी थीं, सहसा तुमको घेर चतुर्दिक्,
मौन मुकुल को घेरे रहते ज्यों नव किसलय !
फूलों की ज्वालाओं सी अंतर प्रांतर में
सुलग लालसाएँ अवचेतन की चिर संचित
विहँस उठी थीं आवेशों के नवल दलों में !

युवती

बीता हुआ सदैव रहस स्मृति से रंजित हो
मोहक बन जाता है ! तब वास्तव का दंशन
विस्मृत क्षण हो जाता, स्मृति के पट में केवल
इच्छा का आनंद स्पर्श संचित रह जाता !

युवक

भूल गईं तुम उस नव यौवन के वसंत को ?
प्राणों के पावक के उन्मादन वैभव को ?
तब जाने किस निभृत गहन के अंतराल से
अंध समीरण उठ, सौरभ के पंखों से छू,
मानस को कर जाता था सौन्दर्य उच्छ्वसित,
भावों के श्लथ सागर को आनंद तरंगित !

रोमांचित हो उठता था तन, कंटक वन सा,
जाने किसके मधुर स्पर्श से !

युवती

नहीं जानती !

युवक

जब भी आती थीं तुम इस अपलक कुटीर में
वह मधु की मदिरा पी, किसलय लोहित दृग हो,
प्रणय कुंज बन जाती थी, कल केलि गुंजरित !
कितने ही गोपन वसंत, पावस, रहस शरद
हमने साथ बिताए हैं एकांत प्राण-मन,
सूक्ष्म अदृश्य सूत्र में बँध अज्ञात प्रणय के !
हाथ हाथ में लिए, तरुण स्वप्नों के पग धर,
विचरण करते थे हम निर्जन वन बीथी चुन,
लहर समीरण से अभिन्न, सौरभ-से कलि-से !

मर्मर शीतल तरुओं की कंपित छाया में
बैठ ग्रीष्म की अलस दुपहरी में हम प्रतिदिन
प्रणय निवेदन के सुख की मादन विस्मृति में
तन्मय हो जाते थे ! वर्षा में श्यामल घन
घिर कर यौवन के दिगंत में, गुरु गर्जन भर,
आकुल कर देते थे अंतर, आकांक्षा की
गहरी छाया डाल धरा पर : विद्युत् अपने
क्षण इंगित से प्रणय भीरु उर को अनजाने
शंकित कर देती थी—

युवती

भावी की लेखा सी!

युवक

कितनी बार शरद के रेखा शशि की मैंने
एक और मुख की रेखाओं से तुलना कर
उसे सदोष बताया है, तुमको कूंई के
अपलक नयनों का विस्मय अर्पित कर सादर...!
और तुम्हारी वेणी के चिर कोमल तम में
गूंथ कभी जब मधु के मुकुलों की सद्यः स्मिति
में मन ही मन तुम्हें हृदय स्वप्नों के मुकुलित
प्रीति पाश में भर लेता था, तब प्रसन्न मन,
तुम अनिमेष दृगों से मेरी ओर देख कर
मंद हास्य से निज गोपन स्वीकृति देती थीं!—
कह दो, तब क्या वह केवल सांत्वना मात्र थी,
या कोमल उर का सुमधुर उपचार मात्र था?

युवती

जो भी समझो, वह केवल कैशोर प्रणय था!
अभी नहीं छूटी क्या मुग्ध तुम्हारे मन से
मेंहदी की लाली सी वह कैशोर भावना
जिसने निज यौवन उन्मुख प्रच्छन्न राग से
था अजान रँग दिया कपोलों की ब्रीड़ा को?
उस अबोधता को प्रमाण मानोगे क्या तुम?...
स्पर्श नहीं कर सकी तुम्हारे भावुक उर को
हाय, वास्तविकता जीवन की नित्य बदलती!

युवक

स्पर्श नहीं कर सका तुम्हारे चंचल मन को
हाय, हृदय का सत्य, कभी जो नहीं बदलता !!

युवती

आज प्रेम विषयक इन मध्य युगी, शुक जल्पित
उद्‌गारों की कीर्ति तुम्हारे मुख से सुनकर
मेरा मन अवसन्न, हृदय उद्विग्न हो उठा !

युवक

तब क्यों तुम मुझको फिर से विस्मृत वसंत की
याद दिलाने आई, ऋतु शृंगार सजा नव ?
वह क्या केवल क्रूर व्यंग्य, उपहास मात्र था ?
या नारी उर की स्वाभाविक निर्दयता थी ?
जिस निगूढ़ निर्ममता की पाषाण शिला से
मायावी विधि ने निर्मित की नारी प्रतिमा,
उसमें मृगजल शोभा, छाया कोमलता भर ?
तुम्हें नहीं क्या ज्ञात, प्रणय चेतना हृदय को
रिक्त पात्र सा जब रस सूना कर जाती है,
तब उसको ये उद्‌दीपन के कुसुमित साधन,
सुख के रंजित उपादान दुखमय लगते हैं,
और सुधाधर की स्मिति भी विष बरसाती है ?

युवती

मुझे ज्ञात है, ये दुर्बल उच्छ्‌वास मात्र हैं,
तुम परिणीत नहीं इन थोथे विश्वासों से !

युवक

कहते हैं, कामिनी कनक साधक के पथ के
बाधक हैं ! पर लक्ष्मी के चल पद क्षेपों से
मेरा कांचन का मद कब का चूर्ण हो चुका,
जो स्त्री का यौवन टुकड़ों में क्रय कर सकता,
ब्रीड़ा की लाली को डुबा सुरा प्याली में
शोभा को अवगुंठन हीन बना सकता औ'
शोषित कर सकता है संख्याओं के जग को ! !

किन्तु शेष थी अभी कामिनी की मृदु ममता,
वह भी विधि ने हँसते हँसते आज कुचल दी
निर्दय अंगुलियों से तोड़ निरीह फूल सी,
उसकी रंगों की पंखड़ियाँ छिन्न भिन्न कर
धरा धूल में, जिसमें सब कुछ मिल जाता है !

कनक काम के ही पावक का, तपः पूत कर,
रूपांतर करना होगा पर नव मानव को,
उसे वासना धूम, राग की दाहकता से
क्षार मुक्त कर, परिणत कर शीतल प्रकाश में :
धूम अग्नि का न्याय प्रकृति का नव संस्कृत कर !
काम शुद्ध कांचन की प्राणोज्वलता से ही
जीवन शोभा की प्रतिमा हो सकती निर्मित !

युवती

मनःशास्त्र कुछ और बताता है, पर जो हो...
मैं उन्मन सी हो, उनसे मिलने आई थी

सुहृद् तुम्हारे हैं अभिन्न जो, मानव मन के
सूक्ष्म तत्व विश्लेषक, अपने गहन ज्ञान से
मेरी सुप्तात्मा को जगा जिन्होंने सहसा
नव चेतन कर दिया, उसे नव दृष्टि दान दे!
अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल में
गुह्य सत्य की निधियाँ जो लाए हैं ऊपर,
आर पार अनुशीलन कर मानस विधान का!

युवक

समझ गया मैं! ...दूर हो गया मेरा संशय!...
नया केन्द्र मिल गया तुम्हारी मधुर वृत्ति को,
नया हृष्ट आधार हृदय की प्रणय क्षुधा को!
सदा रहीं आवेग शील, चिर अभिनव प्रिय तुम,
छिपा रही हो मुझ से अब उर की दुर्बलता
मनोज्ञान का उस पर अंचल डाल रुपहला!
लो, सुखव्रत आ रहा इधर ही, तुम्हें खोजता!

(मनोविश्लेषक सुखव्रत का प्रवेश)

सुखव्रत

नमस्कार! ...ओ, तुम भी यहाँ उपस्थित हो तब!

युवक

इन्हें खींच लाया पहिले ही मन का आग्रह!

युवती

सुनती थी मैं, दीप तले रहता अँधियाला,
वह सच निकला : तुमने अपने बाल्य सखा को
अंधकार ही में रक्खा, अपने प्रकाश से
उनको वंचित कर,—क्या यह आश्चर्य नहीं है ?

सुखव्रत

तुमने नहीं सुना, साधक, कवि, प्रेमी, पागल
वायवीय तत्वों के बने हुए होते हैं :
विधि ने उनका हृदय सूक्ष्म कल्पना द्रव्य से
स्वप्न ग्रथित है किया : नित्य वे स्वर्गधरा के
मध्य भावना पंख मारते रहते निष्फल !
मेरे बाल्य सखा भी साधक हैं : संभव है,
प्रेमी भी : इनकी उत्तेजन शील शिराएं
सदा ज्वार भाटाओं पर उतराती रहतीं !
जीवन और जगत के प्रति ये अनासक्त हैं,
और, अपरिचित भी शायद !——

युवती

क्या विडंबना है !
मैं इन पर वचपन से ही ममता रखती हूँ,
पर ये मुझ को नहीं समझते !

सुखव्रत

मुझे ज्ञात है,
प्रणय दान तुम इन्हें नहीं दे सकीं, कदाचित्

हृदय समर्पण करना तुमको इष्ट नहीं था,—
इसमें इनका दोष नहीं है : अवचेतन की
प्रबल शक्ति से ये संतत अनभिज्ञ रहे हैं !
उच्च ध्येय से पीड़ित है इनकी सुप्तात्मा,
बोधात्मा पर पित्र्य प्रभाव रहा छुटपन से,
अहमात्मा नित हीन भाव से रही प्रतारित :
दमित भावना मार्ग खोजती क्षुधापूर्ति का,
जिससे संघर्षण रहता नित चेतन मन में !

युवती

कैसी अंतर्दृष्टि तुम्हें है मानव मन पर !

सुखव्रत

ऐसी स्थिति में आत्म पलायन के स्वप्नों पर
मोहित हो, उन्नयन खोजता व्यक्ति निरंतर :
वास्तवता से कट कर वह काल्पनिक तुष्टि के
ऊर्ध्व गर्त में गिर पड़ता, छाया सुख सस्मित !

युवती

स्वत: स्पष्ट है ! ... किन्तु प्रेम कैसे होता है ?
क्यों बँध जाते युगल हृदय अज्ञात सूत्र में ?

सुखव्रत

प्राण चेतना अपने ही मौलिक नियमों से
संचालित करती मानव की रागवृत्ति को,

सजातीयता प्राणों की आकर्षित करती
युग्मों के हृदयों को गोपन प्रणय पंथ पर !
प्रेम चयन कर, संग्रह कर होता कृतार्थ नित,
अंध समर्पण मात्र नहीं वह आवेगों का
अवचेतन परिचालित करता उसकी गति विधि
स्तंभित इच्छाएं विमुक्त कर, पिंड द्रवित कर,
कुंठाओं को मिटा, रुद्ध ग्रंथियाँ खोल शत
गुह्य वासनाओं की, आत्म दमन से गुंफित !
निश्चेतन मन का रहस्य चिर दुरवगाह्य है !

युवक

तव क्यों शुक की भाँति रटें हम अवचेतन के
उपभेदों को, उच्छृंखलता से प्रेरित हो,
यदि उन पर अधिकार नहीं है चेतन मन का ?

सुखव्रत

सामाजिक भी एक पक्ष है मनःशास्त्र का,—
जिन मूल्यों पर रागात्मक संबंध मनुज के
निर्धारित होंगे भविष्य में, उनको नूतन
मनः शास्त्र देगा, अवचेतन के समुद्र को
कूल मुक्त कर, रूढ़ि रीति के प्रतिबंधों को
उत्तार मग्न कर, उच्छल प्राणों के प्रवाह को
आवर्तों से गंड शून्य

युवती

इसमें क्या संशय !

सुखव्रत

पचहत्तर प्रतिशत मनुष्य के उद्वेगों का
कारण, रागात्मक प्रवृत्ति का अंध दमन है!
थोथी, रुग्ण, अवैज्ञानिक आचार भित्ति पर
प्राणभावना का है भवन बना समाज का,
रुद्ध द्वार, कुंठित गवाक्ष : नीचे निस्तल स
उठते शत दुर्गंध मलिन उच्छ्वास विषैले,
जिनसे रहता सिन्धु क्षुब्ध मानव का अंतर!

हमें मुक्त करनी है पहिले काम चेतना
युग युग की कृमि जटिल ग्रंथियों से जो पीड़ित,
रागद्वेष, कुत्सा कलंक की कृपण दृष्टि से
उसे बचाना है, गत नैतिक कोण बदल कर!

युवती

घोर क्रांति मच रही आज मानव के भीतर!

सुखव्रत

जब प्राणों का स्वास्थ्य ; बहेगा मुक्त वेग से
नव प्रणालियों से सामूहिक सहजीवन की,
नवल भावनाओं, प्रवृत्तियों का शोणित तब
स्वतः प्रवाहित होगा मांसल चेतन मन में,—
द्वन्द्व चेतना का रुपांतर कर देगा जो!—
और युगों के शमन दमन, उन्नयन पलायन
उड़ जाएंगे प्राणों के झंझा प्रवेग में!

अवचेतन के अतल सिन्धु से उठ जीवन का
रंग ज्वार मज्जित कर देगा जन भू के तट!
शत सहस्र फन खोल पुनः निद्रित निश्चेतन
मनोराग की वंशी के स्वर संकेतो पर
नाच उठेगा—कर विराग के प्रति विरक्त मन!
यह भावात्मक देन अनोखी है इस युग की,
मानस विश्लेषण विज्ञान जिसे देता है!

युवक

बहुत सुन चुका अधः प्राण संदेश तुम्हारा,
निश्चय ही अब नरक द्वार खुलने वाला है!
निश्चेतन के अंधकार में युग का भू-मन
भटक रहा है, नैतिक मूल्यों का प्रकाश खो!
अधःपतन में मुक्ति नहीं है! ऊर्ध्व गमन ही
मुक्ति द्वार है!...मोह मुक्त हो गया आज मन!

रंग पंख वासना प्रणय का मोहक गुंठन
मुख पर डाले, प्रकट हुई थी मेरे सन्मुख
मधुर रूप धर स्त्री का, निज छाया सा अस्थिर,—
यौवन के स्वप्नों का खोल गवाक्ष अर्धस्मित!
मैं जाने कब, अनुभव शून्य, मधुर तृष्णा के
हँसमुख कर्दम में फँस गया, नियति परिचालित!
नारी की पावन शोभा को देख न पाया,
केवल निज इच्छाओं के मोहक वेष्टन से
रहा खेलता, छाया को उर से चिपका कर!

युवती

कैसा है दुर्भाग्य—

सुखव्रत

मांस की दुर्बलता का!

युवक

लज्जित हूँ मैं! क्षमा चाहता हूँ दोनों से!
स्पर्धा के दंशन से पीड़ित, संवेदन क्षम,
इंद्रिय स्पर्शों से मर्माहत, भूल गया था
मैं अपने को, मानव आत्मा के गौरव को!

रोमांचक है हाय, इंद्रियों की यह घाटी,
करुणाजनक कथा है प्राणों के प्रदेश की!
घोर अँधेरी नगरी निस्तल निश्चेतन की,
मुक्त कामना तंत्र राज्य प्यासे असुरों का!!
देवासुर संग्राम क्षेत्र है मानव का मन,
प्राण भावना समर स्थल है जिसका शाश्वत;
एक रोज मानव को भू की अंध गुहा में
ऊर्ध्व ज्योति की विजय ध्वजा फहरानी होगी,—
तभी मुक्त होगी निःसंशय प्राण चेतना!

ऊर्ध्व मान्यताओं का ही सामूहिक जीवन
समतल गत संचरण,—धरा के निश्चेतन से
अविरत संघर्षण कर, नित ऊपर उठ कर जो
सामाजिक भू जीवन में संगठित हुआ है!—
यही ऊर्ध्व इतिहास सभ्यता का है निश्चय!

सुखव्रत

यही करुण आख्यान रुद्ध आकांक्षा का भी!

युवक

यह सच है, संप्रति, मानव के चेतन मन पर
आकर्षण है अधःप्राण अवचेतन मन का,
युग्म भावना लक्ष्य आज दृग आक्षेपों की,
नर नारी का सख्य, मर्म है निभृत कुंज का,
गुह्य कक्ष का, अंध विवर का,—जनरव दूषित!
उसे उदार, विशद दृग बनना है, विकास प्रिय
मानद सीमाओं को स्वीकृत कर भूपथ की!
दूत दूतिकाओं की, पटु परकीयाओं की
पृष्ठ भूमि कटु बदल, प्रणय के अभिसारों की!
मानवीय संस्कार श्रेणि में, यौवन हर्षित
प्राणों के रंग स्फुरणों को मधुर स्थान दे!
निम्न प्राणचेतना एक दिन ऊर्ध्व गमन कर
रागात्मक भू स्वर्ग रचेगी स्वप्न जाल स्मित;
भले उपेक्षित रही रूक्ष नैतिकता से हो,
अपने आरोहण पथ में वह देव योनि बन
बरसाएगी भू पर रत्नस्मित आभाएं
श्री शोभा, विश्वास प्रीति, आनंद ज्योति की!...
व्यापक ऊर्ध्वस्थल पर उठकर प्राण शक्ति ही
मनुष्यत्व में परिणत होगी सुर आकांक्षित!
नव नारी नर, विभा रश्मि से चिर अंतः स्मित,
विचरेंगे जग में, कृतार्थ कर भू विकास पथ!

सुखभ्रत

धन्यवाद ! ये पुण्य कल्पनाएं हैं केवल !

युवती

हाय, पुण्य इच्छाएं पंख अश्व भी होतीं !

युवक

छँटते जाते हैं अब धूमिल वाष्पों के घन,
हटती जातीं स्वर्णिम नीलारुण छायाएं,
खुलते जाते अंतरिक्ष के अंतर्मुख पट,—
और निखरने लगे शुभ्र निर्वाक् शिखर फिर
ऊर्ध्व प्राण, अंतश्चेतन सोपान से खड़े,—
समाधिस्थ हो उठा पुनः हो बहिर्व्याप्त मन !

इस मरकत द्रोणी के हँसमुख सम्मोहन से
मोह मुक्त हो रजत अभीप्सा अंतस्तल की
आतुर है उड़ने को उन्मेषित पंखों में
मनः क्षितिज के पार चेतनातप के नभ में,—
जहाँ विचारों का अनुगुंजन लय हो जाता !

अंतिम तृण हट गया, कट गया दुर्गम पर्वत !...
अतल गर्त नीचे, ऊपर दुर्लंघ्य शिखर है !
नीचे इंद्रिय रौंद रहीं निर्मम चरणों से,
दुरारोह निर्जनता ऊपर द्वैत शून्य है !—
सहज एक-बहु की स्थिति का आकांक्षी है मन !

जल जल उठते शीत स्वच्छता से इच्छा पग,
कँप उठता उर, हरित ऊष्मता के अभाव से;
ज्यों ज्यों आरोहण करता मन मौन शांति में
धरती का क्रंदन ही ऊपर स्वर संगति पा
बन जाता संगीत सुनहली झंकारों का!
मानव ही सुर में परिणत हो जाता उठकर!
अन्न प्राण मन हँस उठते चेतनाऽलोक में,—
सर्वशक्तिमय दिव्य तमस है जड़ धरणी का!

महाश्चर्य है! वही सत्य है! ऊपर है जो
शिखर, वही नीचे प्रसार है! एक संचरण
मात्र! ऊर्ध्व हो अथवा समदिक्, दोनों ही पर
अन्योन्याश्रित हैं निश्चय! दोनों के ऊपर
एक अनिर्वचनीय रहस्य, हृदय रोमांचक!

(जनरव)

किंतु, कौन आ रहे इधर वे गीत रुदन भर?

(दूर से प्रवाहित समवेत गीत)

कहाँ मिले स्वर्गवास,
घोर त्रास, घोर त्रास!

एक स्वप्न गया टूट,
एक नीड़ गया छूट
आस पास मची लूट
मृत्यु कर रही विलास!

किधर बह रहा समीर
अतल सिन्धु जल अधीर,
कहाँ मिले, दूर तीर,
भँवर में पड़े प्रयास !

जा रहा किधर उदास
मनुज आज चिर निराश,
यह विकास या विनाश ?
बदल रहा युग लिबास !

बीत गई काल रात
वज्र गिरा अकस्मात्,
खड़ा शिखर पर प्रभात—
हृदय में न पर हुलास !

(विस्थापितों का प्रवेश)

विस्थापित

विस्थापित हैं, हम धरती के विस्थापित हैं !
शरणार्थी, नव भू जीवन के शरणार्थी हैं !
उफ़, जिन काले कृत्यों के अँधियाले से हम
किसी तरह बाहर निकले वे अकथनीय हैं !
मार काट, हत्या, निर्दयता, कटु नृशंसता,
पैशाचिक उद्दाम कामना का खर तांडव !
नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव !
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यों अवचेतन के

अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आए हों
धरती की रज योनि चीर कर, बलात्कार कर!
बलात्कार, व्यभिचार, मृत्यु के मुख का कटु सुख!!

कुछ स्वर

उफ, किसने चीरा कोमल कदली स्तंभों को,
स्वर्ण कंदुकों को लूटा,...फूलों की कंपित
डालों को धर निर्दयता से तोड़ मरोड़ा!
पागलपन था, पागलपन सिर पर सवार तब!
कहाँ मर गई थी लज्जा सज्जा की ममता?
कहाँ उड़ गए थे आँखों से फूलों के रंग?
बिखर गईं थीं उर की स्वप्न भरी पंखड़ियाँ,
अंतर की कोमलता थी पाषाण बन गई!!

शील सभ्यता, दया मधुरता, श्री सुंदरता
कहाँ मिट गए जीवन के उपचार थे मधुर?
ढेर हो गए ढेर, सभी वीभत्स दृश्य बन,—
भाँय भाँय करता था तब भूतल श्मशान सा,
साँय साँय करता था उर निर्जन मरुथल सा!

कुछ स्वर

आग, आग! भगदौड़! लीलती लपटों का जग!
कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे!
लूट पीट, छीना झपटी ......हम भूत प्रेत हैं,
संप्रदाय के कट्टरपंथी भूत प्रेत हैं!
रूढ़ि रीतियों के धर्मांध पिशाच प्रेत हैं!!

कायरता, निष्ठुरता, मानव की बर्बरता,
प्रतिनिधि है मानव धरती की बर्बरता का!
भूमिकंप था वह मुर्दों के संप्रदाय का,
सभा गया अब धरती की घायल छाती में!!

युवती

कान जल रहे, अब भी सुनकर कान जल रहे!

सुखव्रत

एक अचेतन की तरंग के प्रबल घात से
बालू का सा दुर्ग, यान मानव जीवन का
तहस नहस हो गया, तिमिंगल पुच्छ पात से! ...
सब प्रकार के सामूहिक ऊहापोहों का,
राग द्वेष, ईर्ष्या स्पर्धा का, कलह क्रोध का,
धर्मों वर्गों के विरोध का, रीति नीति गत
विद्रोहों का—एक मात्र गोपन कारण है
अवचेतन का उद्वेलन, कुंठित तृष्णाएँ,
रुद्ध अतृप्त पिपासाएं वासना गुहा की!

रागात्मक संतुलन नहीं आएगा जब तक
प्राणों के जीवन में, तब तक मानव जग में
नैतिकता के मुख से गुंठन नहीं हटेगा!
धर्मों के सिंहासन में भूकंप रहेगा!
सामाजिक संबंध सजीव न हो पाएंगे,
धरती के अंगों का कर्दम धुल न सकेगा!

बौना, नाटा, ठिगना, कुबड़ा मानव जीवन
लँगड़ाएगा भूपर, दब कर पाप भार से!

(राजनीतिज्ञ का प्रवेश)

राजनीतिज्ञ

शांति, शांति! मैं धरती के निर्वासित जन को
फिर स्थापित करने आया हूँ, पुनर्वास दे!
प्रथम भूख है, काम नहीं : मैं उदर क्षुधा से
पीड़ित जीवन कंकालों को अर्थशास्त्र का
लोकतंत्र मय संजीवन देने आया हूँ!

एक स्वर

नेता हैं क्या आप?

राजनीतिज्ञ

मात्र जन सेवक हूँ मैं!
मेरे पास अनेक नई योजना बनी हैं,
कार्य रूप में जिनको परिणत भर करना है!
अन्न,वस्त्र, आवास,—कमी है यद्यपि इनकी,
मनु के सुत को किंतु सदा धीरज धरना है!
वैसे कागज़ की हैं बनीं अनेक योजना!

कुछ स्वर

हमें ज्ञात है, हमें ज्ञात, तुम बहुमत से नित
चलते, अपना नहीं कभी रखते कोई मत;
परिवेशों के सतत बदलते मूल्यों पर ही
अवलंबित रहते, अपने हैं मान न मौलिक:

रजत शिखर

नित्य परिस्थितियों की ही चेतना तुम्हारी
अपनी भी चेतना रही, तुमको बाहर का
कार्य भार है घोर,—स्वतः चेतना शून्य तुम
भीतर से बस सूने, कोरे अभिनेता हो!

कुछ स्वर

हम उन्मूलित हैं, उच्छेदित इस जगती के,
निज स्वजनों से दूर, परिजनों से चिर वंचित!
नष्ट हो गया सब विनाश के भृकुटि पात से,
हम खँडहर हैं महाध्वंस के, भीषण पंजर!
खेत बाग, घर आँगन, दारा सुत, स्त्री संपद
आँखों के सन्मुख फिरते छायाभासों-से;
दुःस्वप्नों से प्रेत ग्रस्त, हम घोर जागती
निद्रा हैं, जो टूट टूट जाती फिर भय से!
कुचल रही हैं वज्र हृदय को निर्दयता से
दुःस्मृति की दारुण छायाएं, कटु प्रहार कर!

कुछ स्वर

क्या होगा अब, क्या होगा?...अह, उस मिट्टी का,
उन ईंटों का? कहाँ खोगया दृढ़ घनत्व वह,
ठोस रूप वह?—जो झंझा झड़, लू अंधड़ में
अविचल रहता था, अब सहसा पिघल गया क्यों?
रिक्त वाष्प बन कर उड़ गया अचानक कैसे?
रूप रेख आकृति सब ओझल कहाँ होगई?
क्यों सूना, खोखला हो गया जग क्षण भर में!
दुःस्मृति है केवल..हम भी अपनी दुःस्मृति हैं!!

युवक

एक ओर मानव मन, जीवन सीमाओं को
अतिक्रम कर, उत्सुक है नव चेतना स्वर्ग में
आरोहण के हित : अभिनव आनंद मधुरिमा
ज्योति प्रीति का मंगल धाम बनाने भू को:
और दूसरी ओर धरा के अंध गर्भ से
निश्चेतन की क्रूर शक्तियों की कल्लोलें
मृत्यु नृत्य कर जीवन शोभा के प्रांगण में
मग्न कर रहीं जन धरणी को महाध्वंस में,
घृणा द्वेष, हिंसा स्पर्धा के रक्त पंक में!
घोर विरोधी, प्रतिस्पर्धी बन अडिग खड़े हैं
पुन: स्वर्ग पाताल, परीक्षा हित मनुष्य की!
मानवता पिस रही युगल निर्मम पाटों में,
स्वर्ग नरक पर जय पानी होगी मनुष्य को!

कुछ स्वर

हम फिर से घर द्वार बसाएँगे जन भू पर,
हम मानव परिवार बढ़ाएँगे जन भू पर!
मृत्यु ज्वार पर चढ़ कर फैल समस्त धरा में,
नव जीवन संचार कराएँगे हम भूपर!
एक वृत्त हो रहा समापन जग जीवन का
हम फिर नव संसार बनाएँगे जन भूपर!
कलह क्रोध, ईर्ष्या स्पर्धा का गरल पान कर,
हम जीवन का भार बँटाएँगे जन भू पर!

आधि व्याधि का, रोग शोक का, दैन्य जरा का
हम फिर से उपचार कराएंगे जन भू पर!
उजड़ गया जो फिर उसको आबाद कर नया,
हम नव जीवन ज्वार उठाएँगे जन भू पर!

कुछ स्वर

चुप हो जाओ, चुप हो जाओ! ... छायाएँ हैं
चली आ रहीं, दल बाँधे,—जीते मनुजों की
भीड़ चीरतीं! छिन्न भिन्न अवयव हैं उनके,
टूटे हाथ पैर, हिलते हड्डी के ढाँचे,—
माया ममता और अधूरी तृष्णाओं का
बोझ पीठ पर लादे वे सब भटक रही हैं
अंधकार में राह टोह, लोहू से लथपथ,
तार तार जीवन छायाएँ,—बुड्ढे, बच्चे
नौजवान,... सब दल पर दल हैं चले आ रहे!

लँगड़ातीं, गिरती पड़तीं, कँपती छायाएँ
अंगों को छटपटा रहीं दुख की आँधी में;
टपक रहे हैं घाव, खौलता रुधिर बह रहा,
जीवन की इच्छाओं से, सपनों से लोहित ...
मा बहनें हैं, मा बहनें वे, ... जो पीड़ा से
चीख रहीं! ... दुख की कराह से कान फट रहे,
धरती की गूंगी पुकार से हृदय छिद रहा!
बहरा है आकाश! दिशा भी बहरी हैं क्या?
बहरा क्या हो गया विश्व! ... यह असहनीय है!!

युवती

अह, कराह से कान फट रहे, हृदय छिद रहा,
भाले की सी तीव्र नोंक से मर्म बिंध रहा!

युवक

हाय, निखिल सभ्यता और भू जीवन की ही
गाथा है शोणित से पंकिल, हृदय विदारक!
विस्थापित हैं हम सब, भूले विस्थापित हैं,
छूट गया कब कहाँ न जाने देश हमारा,
हम धरती पर विस्थापित हैं, निर्वासित हैं!
यहाँ खोजने आए सब उस स्वर्ण धरा को,
यहाँ मिटाने आए हम भय रोग जरा को!
लहरों पर लहरें उठतीं धरती के तम की,
तह पर तह खुलता जाता नभ का प्रकाश है!
पुनः उतर आया मैं धरती की खाई में
अंजलि सी जो बनी ज्योति को संचित करने:
पुनः उतर आया मैं प्राणों की घाटी में
आकुल है जो अग्नि बीज गर्भित होने को!

सुखव्रत

स्वागत है, स्वागत है!

युवती

सुनने दो, सुनने दो!

युवक

अंतस् ही में नहीं, बाह्य से बाह्य क्षेत्र में
मैं अनुभव कर सकूँ अनिर्वचनीय सत्य के
अमृत स्पर्श का : जन मन के भावों के स्तर पर,
जीवन की प्रत्येक दिशा, प्रत्येक रूप में!
मैं अतिक्रम कर सकूँ बाह्य भीतर के अंतर,
यही प्रार्थना है अंतर्यामी से मेरी!

सुखव्रत

भाव प्रवण उर का यह नूतन परिच्छेद है!

युवक

इस घाटी में, अपनी ही छाया के पीछे
भटक रहे जन : छोटे मन के छोटे मोटे
स्वार्थों में अनुरक्त : परस्पर की स्पर्धा से
उन्नति में रत : एक दूसरे के परिभव से
जीवन सक्षम : इसीलिए कुंठित मानव मन
जीवन विमुख, विरक्त, तिक्त हो उठता जग में!
यहाँ बरसता नहीं स्नेह हर्षित नयनों से,
सहज समव्यथा छलक नहीं उठती हृदयों में,
इस घाटी के रहन सहन में श्री शोभा का
घोर अभाव खटकता मन को : मानव उर में
यहाँ अभी तक प्रेम नहीं हो सका प्रतिष्ठित
मानव के प्रति, आदर जीवन गौरव के प्रति!
रिक्त प्रतिष्ठा भार झुकाए हुए रीढ़ को!!

भर भर उठता हृदय घृणा, थोथे विराग से
श्रांत क्लांत अनचाहा मानव जब घर घर में
सुनता नित्य कलंक कथा, कुत्सा, पर निन्दा!

युवती

यही रूप है आज धरा की वास्तवता का!

युवक

साधक अब मैं नहीं,—नम्र आराधक भर हूँ!
साधक मेरे पूजनीय हैं, ऊर्ध्वारोही,—
समतल गामी जगत प्रणत है जिनके पद पर!

ऊर्ध्व शुभ्र, एकाग्र शिखर पर खड़े चिरंतन
देख रहे हैं जग के स्वामी भू के उर्वर
इस बहुमुख फैले प्रसार में, सतजल कल्पित
अपनी ही आनंद तरंगित रहस प्रकृति को!
फूलों की चोली पहने, लहरा हरितांचल,
चूर्ण नील कुंतल छहरा दिक् सौरभ विश्लथ,
घुटनों के बल बैठ, उच्छ्वसित हृदय सिन्धु ले,
अपलक आयत दृग जो देख रही ऊपर को
अमृत प्रीति वरदान हेतु जीवन साथी से:—

'अपने मंथर दिग् विस्तृत आवर्त शिखर में
धूम असीम छटा में अथक अनंत काल तक,
फिर फिर तन्मय होती निज अंतः प्रकाश में
प्राप्त करूँ चैतन्य अमर मैं ज्योति शक्ति मय!

ऊपर से नीचे अपार शोभा सुंदरता
हर्ष प्रीति की आभाएँ नित रहें बरसती,—
अन्न प्राण मन के त्रिदलों को विकसित करतीं !

युवती

कैसी उच्च विराट् कल्पना है धरती की !

युवक

आराधक बन सकूं प्रणत मैं दिव्य ज्योति का,
जो इस मृण्मय धरा दीप की अमर शिखा है,
जिसकी करुणा किरणों के अंत:स्पर्शों से
इस द्रोणी का तम स्वप्नों में दीपित होता !
हम सब विस्थापित हैं : हम सब उत्थापित हैं !
पुनः बसाएंगे हम धरती की घाटी को,
नव स्वप्नों के स्रष्टा, नव जीवन शिल्पी बन,
मानवीय शोभा गरिमा, आनंद मधुरिमा
ज्योति प्रीति का स्वर्ग बना जन मंगल भू को !

युवती

मैं भी हाथ बटाऊँगी इस लोक कार्य के
आयोजन में साथ आपके, श्रद्धानत हो !
मेरा मन संदेह रहित होगया आज चिर
आश्वासित हो ! ...ऊपर है प्रकाश का द्योतक,

नीचे निस्तल अंधकार का! निचले मन के
आवेगों को हमें संगठित करना होगा
ऊर्ध्वज्योति में! ... संयम ही वास्तविक मुक्ति है!
प्राणों का संतुलन मुक्ति है मानव मन की,
ऊर्ध्व चेतना का जो क्रीड़ा स्थल है उज्वल!

युवक

यही मर्म है, मैं कृतज्ञ हूँ!

सुखव्रत

प्रवंचना है,
यह प्रवंचना ... खूब मनोहर छलना निकली
तुम मायामयि, अवचेतन की मोहक तृष्णा ...

युवती

मनुज स्वयं अपने मन को छलता रहता है,
मुक्त हो गया मेरा मन अब उस छलना से!

सुखव्रत

मुक्ति नहीं है आत्म पलायन, मधुर मृत्यु है!
जाता हूँ मैं, घोर पलायन के प्रमाद से
मानव मन को सद्य मुक्त करने का व्रत ले!

(प्रस्थान)

युवक

आज नई मानवता के शुचि प्राण सूत्र में
नर नारी का हृदय बँध रहा लोक कर्म हित,

मिलन शांति स्मित, विरह अकातर, प्रीति समर्पित,
नई चेतना से स्पंदित, सद्भाव संगठित!

आओ, हम दोनों मिल, प्राणों की घाटी में
विस्थापित मानव का फिर घर द्वार बसाएँ,
शुभ्र रजत शिखरों की ऊर्ध्वग दिव्य शांति ले,
अंबर की व्यापकता, सागर की गभीरता,
गिरियों का चिर धैर्य, अथक सरिता की गति ले,
भू जीवन के उपादान नव आज जुटाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ!

नव वसंत शोभा से, स्वच्छ शरद सुषमा से
फूलों के सारल्य, युक्त तृण तृण के बल से,
हम सुंदर स्वप्नों का जीवन नीड़ बनाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ!

भ्रातृ भावना, विश्व प्रेम से भी गभीरतम
प्रीति पाश में बाँधे हम नव मानवता को,
जिसका दृढ़ आधार एकता हो आत्मा की,
जिसकी शाश्वत नींव चेतना की उज्वलता,
मनुज प्रेम के लिए मात्र हो मनुज प्रेम वह,
जग को नव संस्कृति का स्वर्णिम द्वार दिखाएँ,
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएं!

युवती

आज दौड़ता भूमि कंप जन मन धरणी में,
कैसे हम नव आशा, नव विश्वास बँधाएँ?

गरज रहा भीषण अणु दानव विश्व गगन में
मृत्यु अंक में कैसे हम अमरत्व जगाएँ ?
क्षुधा दैन्य का भार ढो रहे जब असंख्य जन
कैसे भू को जीवन शोभा में लिपटाएँ ?
आदर्शों से विरत आज स्वार्थों में रत जग,
कैसे स्वर्णिम मनुष्यत्व की ज्योति दिखाएँ ?
कैसे हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ ?

युवक

यह सच है, नव मनुष्यत्व के निर्जन पथ में
बाधा विघ्नों के दुराग्रही श्रृंग अड़े हैं
स्थापित स्वार्थों से जकड़े,—जो पूर्व पक्ष हैं;
उत्तर पक्ष क्षितिज से इंगित करता ज्योतित
मानव भावी के स्वर्णोदय में दिक् प्रहसित !

आओ, हम अंतः प्रतीति को धर्म बनाएँ,
आओ, हम निष्काम कर्म को वर्म बनाएँ,
हम आत्मा की अमर प्रीति के धरा स्वर्ग में
सब मिलकर जीवन स्वप्नों का नीड़ सजाएँ;
आओ, हम नव मानव का घर द्वार बसाएँ !

युवती

आज बहुत ही बड़ा चाँद आया है नभ में,
अंतर का खुल गया रुपहला हो वातायन,—

मौन क्षितिज से, शुभ्र हास्य बरसाते भू पर
रजत शिखर, मानव आत्मा की गरिमा-से उठ !
आज प्रार्थना के हित आकुल स्वप्नों का मन !

(समवेत प्रार्थना गीत)

धरा शिखर हे,
अंतर के ज्योति ज्वार
अजर अमर हे !

ध्यान मौन, ऊर्ध्वप्राण,
तदाकार पूर्ण ज्ञान,
श्रद्धारोहण समान
शुभ्र सुधर हे !

शांत क्लेश हों अशेष,
शांत निखिल राग द्वेष,
भाषा हो भाव वेश
सुंदरतर हे !

विकसित हो जन अंतर,
कुसुमित जन भू के घर,
भोगें नव जीवन वर
नारी नर हे !

रजत शिखर

ऊर्ध्व गगन उठा निखर ,
चंद्र किरण रहीं उतर,
स्वप्न पंख रहे विचर
स्मित नभचर ह !

२५ जून १९५१)

फूलों का देश

फूलों का देश सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। प्रस्तुत काव्य रूपक में इस युग के अध्यात्मवाद भौतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद संबंधी संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनमें व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है एवं विश्व जीवन में बहिरंतर संतुलन तथा परिपूर्णता लाने के लिए दोनों की ही उपयोगिता दिखाई गई है।

स्त्री पुरुष स्वर

कलाकार

वैज्ञानिक

विद्रोही जन

(नव वसंत सूचक वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

यह फूलों का देश, ज्योति मानस का रूपक :
जहाँ विचरते अंतर्द्रष्टा कलाकार, कवि
निभृत कल्पना पथ से नित, भावोन्मेषित हो !
यहाँ प्रेरणाओं की स्मित अप्सरियाँ उड़कर
बरसातीं आभा पंखड़ियाँ शत रंगों की,
स्वप्नों से गुंजरित : यहाँ स्वर्णिम भृंगों की
रजत घंटियाँ बज उठतीं हर्षातिरेक से—
देवों का संगीत अमर वाहित कर भूपर !
यहाँ काँपती-छायाएँ, शोभा वसनों सी,
गोपन मर्मर ध्वनि भरतीं मानस श्रवणों में,—
भावी की अश्रुत चापों सी आकृति धरतीं !

स्त्री स्वर

यहाँ प्राण पुलिनों को भावों से स्पंदित कर
जीवन की आकांक्षा बहती कल कल ध्वनि में;

प्रीति श्वास सी समुच्छ्वसित रहती मलयानिल
नाम हीन सौरभ से आकुल कर अंतर को !
यह मोहित अभिसार भूमि है गंधर्वों की,
जहाँ दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम द्राभा में रचती है सृजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरँग कल्पित !
यहाँ गूँजता रहता है संगीत अहर्निशि,
भाव प्रवण मानस द्रव्यों से प्रवहमान हो!

(वाद्य संगीत : समवेत गान)

यह फूलों का देश !
यहाँ निरंतर जीवन शोभा
सजती नव नव वेश !

यहाँ लोटते इंद्रचाप शत
हँसते अपलक स्वप्न मनोरथ
यहाँ झूलता रश्मि दोल में
मानस का उन्मेष !

झरते स्वर्णिम निर्झर कलकल
भरते प्राणों में स्वर कोयल,
सुंदरता को देती स्वर्गिक-
प्रीति हर्ष संदेश !

यहाँ गूँजते अहरह दिशिपल
बरसा करता जीवन मंगल,

सृजन चेतना की यह स्वप्निल
लीला भूमि अशेष !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

यहाँ विजन छाया वन में रहता एकाकी
एक स्वप्न द्रष्टा कवि, तरुण अरुण सा सुंदर,
लता प्रता से मंडित कुसुमित पर्ण कुटी में !

जीवन का संघर्ष, करुण क्रंदन, चीत्कारें
उसके भाव जगत को छूकर मर्म गीत में
परिणत हो जातीं, युग जीवन के स्वप्नों की
शोभा से वेष्टित हो, नव संतुलन ग्रहण कर !
खोजा करता वह विनाश के महाध्वंस में
नवल सृजन की स्वर संगति, उड़ते मेघों के
त्रस्त जाल में घिरती तिरती शशि रेखा सी !
भावोद्वेलित वक्ष, खड़ा तृण कक्ष द्वार पर,
सोच रहा वह स्वगत, गंध गुंजित मधुकर सा—

(स्वप्न वाहक वाद्य संगीत)

कवि

यह छाया का देश, कल्पना का क्रीड़ा स्थल,
वस्तु जगत अपना घनत्व खोकर इस जग में
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भाव द्रवित हो !

जीवन के संघर्षों की प्रतिध्वनियाँ उठकर
यहाँ बदलती रहतीं उर संगीत में विकल!
इस मानस भू पर निःस्वर चलते नित सुरगण
स्वप्नों के घर चरण चिह्न आशाऽकांक्षा स्मित!

यहाँ बिछातीं शत शत रंगों की ज्वालाएं
अपलक इंद्रजाल शोभा का, जन मन मोहन:
सुन पड़तीं अप्सरियों की पदचाप रुपहली
कँपती-छायाओं के पुलकित दूर्वांचल में—
आँखमिचौनी खेला करतीं जो जीवन से!

बड़ी बड़ी चट्टान यहाँ धरती की आदिम
चुप्पी सी दम साधे नीरव चिन्तन करतीं:
अर्धरात्रि में झिल्ली तरु कोटर में झन झन
स्वर भर, सूनापन विदीर्ण करती वन भू का,
घोर गुह्य आकांक्षा सी जग निश्चेतन की!
यहाँ भयानकता सुंदरता प्रीति पाश में
बँधकर करतीं क्षण उपहास नियति का निर्मम!

(गंभीर प्रसन्न वाद्य संगीत)

कवि

शांत, सौम्य, सोई वन श्री अब जाग रही है
नव प्रभात के स्पर्शों से स्वर्णिम चेतन हो,
बरस रहा नीड़ों से कलरव सृष्टि गान सा,
सिहर रहे पत्ते थर् थर्, सुख से विभोर हो!

गंधपवन में धरती भीनी साँस ले रही,
जाग रहीं वन छायाएं अँगड़ाई भरतीं!
तरुण मधुप, षट्पद से हटा पँखुरियों के पट
अर्धस्मित कलियों के मृदु मुख चुंबन करते?

यह प्रभात भी संसृति का आश्चर्य है महत्,
मौन प्रार्थना सा, पवित्र आशीर्वाद सा!
विस्मित कर देता जो भू मानस पलकों को
दिव्य स्वप्न सा, अमर स्वर्ग संदेश सा उतर!
धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुनः युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है!

यह फूलों का देश आज फिर धन्य हो उठा,
वाहित करता जो धरती की ओर निरंतर
देवों का ऐश्वर्य अतुल,—शोभा सुंदरता,
ज्योति प्रीति आनंद अलौकिक स्वर्ग लोक का!

जाग रही हैं सुप्त प्रेरणाएँ मानस में,
यह अंतर्नभ का प्रभात है जन मंगल कर!
तरु पत्रों के अंतराल से छन नव किरणें
लोट रहीं भू रज पर ज्योति प्ररोहों सी हँस!

(हर्ष वाद्य संगीत)

युग प्रभात यह : एक वृत्त हो रहा समापन
धरा चेतना में संस्कृति का आज पुरातन!
नव युग की प्राणों की आशा अभिलाषाएँ

मर्म मधुर संगीत लहरियों में मुखरित हो
गूंज रही हैं, छाया वन के नव मुकुलों को
घेर चतुर्दिक् ! सद्यः स्फुट कुसुमों के मुख पर
विहँस रहे हैं स्वर्णिम ओसों के मुक्ता कण,
स्वप्नों की पद चापों से कँप उठता भूतल !
देख रहा मैं मनश्चक्षु से, ताल में ध्वनित,
अगणित निर्भय चरण क्षितिज की ओर बढ़ रहे!

(वाद्य संगीत : दूर से आता हुआ नर नारियों का समवेत गान)

युग प्रभात,
रक्त स्नात, युग प्रभात !

अंधकार गया हार
मानस का हटा भार,
मुक्त पंथ, मुक्त द्वार
गई रात !

सागर में बाँध सेतु
अंबर में उड़ा केतु
मानव की विजय हेतु
बढ़ो तात, बढ़ो भ्रात !

पर्वत के गिरें शिखर
मरुथल हों नव उर्वर,
विघ्नों पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात !
करो घात !

फूलों का देश

(नर नारियों का प्रवेश)

स्त्री स्वर

कौन, कौन तुम, अरुण, वसंत, मदन-से सुंदर
पत्रों के प्रच्छाय नीड़ में यहाँ छिपे हो
पक्षी से एकाकी ? नगरों से, वासों से
दूर, सभ्यता के केंद्रों से विरत, विमुख हो
युग जीवन संघर्षण से, जन आकर्षण से ?

कवि

अरुण वसंत मदन सा ! पक्षी सा एकाकी ?
कलाकार हूँ मैं, पर जीवन संघर्षण से
विरत नहीं हूँ ! ...देखो, मेरी स्वप्न निमीलित
आँखों में भावी का स्वर्णिम बिम्ब पड़ा है !

पुरुष स्वर

(साश्चर्य) भावी का प्रतिबिम्ब ?

कवि

स्वर्ग की वेणी से मैं
इंद्रधनुष को छीन, धरा के तिमिर पाश में
उसे गूंथ जाऊँगा,—देवों की विभूति से
मनुष्यत्व का पद्म खिला जीवन कर्दम में !
ताराओं के छायातप से रँग रँग कर मैं
जन भू का उपचेतन, रज की पंखड़ियों को

अंतः सुरभित कर जाऊँगा, नंदन वन के
फूलों की शाश्वत स्मिति भर मृण्मय अधरों में...
मैं नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ़ रहा
अंतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से!

जनगण

हः हः हः हः!!

कवि

मैं विराट् जीवन का प्रतिनिधि हूँ! मैं वन के
मर्मर से, युग के जनरव से चिर परिचित हूँ!
भौंरों का मधु गुंजन, कोयल का कल कूजन
मेरे ही स्वर हैं! स्वर्णातप मेरी स्मिति है!
मेरे उर के स्वप्न तितलियों की फुहार-से
रँग रँग की शोभा बखेरते जन मानस में!
ऊषा, ज्योत्स्ना, ओस और तारे मेरा ही
चिर संदेश वहन करते! पर्वत निर्झर-से
मेरे गायन फूट, दग्ध युग मन के मरु में
प्राणों का कलरव, जीवन हरियाली भरते!
धरा स्वर्ग को स्वप्न सेतु में बाँध सुनहले
मैं सोपान बना जाऊँगा सुन नर मोहन!

प्रथम स्वर

खूब अहंता का ऐश्वर्य मिला है तुमको!

फूलों का देश

द्वितीय स्वर

आत्म वंचना का उन्माद पिए हो मादक!

प्रथम स्वर

कलाकार हो, तभी हवा में महल बनाते!
रिक्त स्वर्ग में रहते आत्म पलायन के हो!

कवि

तुम जो अस्त्रों शस्त्रों से सज्जित सेना ले,
विजय ध्वजा ऊँची कर, चलते संख्याओं में,
तुम भी मेरा कार्य कर रहे! ...धरा धूलि में
जो जीवन तृष्णा, भुजंग सी शत फन फैला
लोट रही है नीचे, मैं ऊपर से उसकी
शोभा रेखाएँ अंकित करता तटस्थ हो,
व्यापक युग पट में सँवार कर: उसकी घातक
विष की फुंकारों को पीकर, मर्माहत हो,
हृदय दाह में जलता प्रतिपल, मैं उसपर हूँ
बरसाता चेतना अमृत निज, तिक्त घृणा को
मधुर प्रीति में, कटु तमिस्त्र को उर प्रकाश में
आत्म विद्रवित कर! केवल स्वर शब्दों की ही
रिक्त साधना मात्र नहीं होती युग कवि की,
उसे साम्य संगति, सार्थकता भरनी होती
जीवन विशृंखलता में, सौंदर्य खोज कर,
मानस कमल खिला कर्दम में!

प्रथम स्वर

बहुत हुआ बस !
रहन दो यह वाक् चपलता ! वह शोभा की
सीमा लाँघ चुकी है ! मृगतृष्णा के पूजक,
तुम अपने को जीवन का प्रतिनिधि बतलाते ?
और विधाता बन बैठे हो मनुज नियति के !

द्वितीय स्वर

हम हैं भावी के निर्माता, मानवता के
जीवन शिल्पी, भू के जनगण, जो युग युग की
लौह श्रृंखला तोड़, वज्र संगठित हुए हैं !
बंधन मुक्त, नई जन मानवता के रक्षक !

हम वन पर्वत, सागर मरुथल में मानव की
विजय ध्वजा फहराएँगे ! इस वन प्रांतर में
जहाँ बनैले पशुओं की हैं गुहा, वहाँ हम
सेना शिविर बनाएंगे निज, जहाँ खगों के
नीड़ मात्र हैं, वहाँ जनों के वास बनेंगे !
हमको सामूहिक जीवन की आवश्यकता
समतल मनुज बनाने को है बाध्य कर रही !
तभी तुम्हारे से आदिम जन, युग जीवन के
नव स्पर्शों से विकसित, संस्कृत हो पाएँगे !

कवि

निःसंशय, आदिम हूँ मैं !

कुछ स्वर

(दर्प से) हम चिर नवीन हैं!

स्त्री स्वर

नहीं, नहीं,—परिहास कर रहे हो तुम हमसे!
तुम कवि हो, तुम कलाकार हो! तुम युग युग के
अभिशापित, शोषित जनगण के साथ रहोगे!
युग संकट में उद्बोधन के गान छेड़कर
तुम जनता को साहस दोगे, संबल दोगे!

कवि

अगर साथ रहने देंगे जनगण के नायक!!

स्त्री स्वर

देखो, तुम देखो इन हड्डी के ढाँचों को—

एक स्वर

बज्र बन चुके हैं दधीचियों के ये पंजर!

स्त्री स्वर

देखो, नग्न क्षुधित मनुष्यता की छलना को,
रक्त क्षीण, निष्ठुर विषण्णता को जीवन की!!
वर्तमान का भीषण उत्पीड़न है इनको
निर्ममता से कुचल रहा! यदि एक बार तुम
आँख खोल कर इन्हें देख लोगे जो सचमुच,

करुणा से विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलों के जग के वासी!

एक स्वर

और क्रोध से पागल हो जाओगे शायद
आदर्शों के मूर्ति पूजकों के इन कुत्सित
दुष्कर्मों को देख, घृणा से आँख फेर कर!
मृत प्रतिमाओं के पूजक जीवित जनता के
पूजक कभी नहीं हो सकते,—जीवन्मृत जो!

कवि

देख रहा हूँ, मैं लज्जा मे गड़ा जा रहा!
कब से मेरे मन की आँखों के सन्मुख उठ
नाच रही हैं छायाएं संक्रांति काल की!
भूखों के कंकाल खड़े चीत्कार कर रहे,
अवचेतन के प्रेत भर रहे अट्टहास हैं!
क्रूर, ह्रास युग के लोभी असुरों से पीड़ित
मानवता कातर बन रोदन छोड़, एक हो,
आज क्रुद्ध ललकार रही, हुंकार भर रही!

(तुमुल वाद्य संगीत : समवेत गान)

भूत के कंकाल हैं हम,
क्रुद्ध रुद्ध कराल हैं हम!
कंठ से लिपटे त्रिशूली के
भयंकर व्याल हैं हम!

मनुजता के प्रेत हैं हम
आज सब समवेत हैं हम,
बीज हैं हम, खेत हैं हम,
शक्ति अमिट विशाल हैं हम!

खड्ग हैं हम, ढाल हैं हम,
ज्वार से उत्ताल हैं हम,
रुद्र की दृग ज्वाल हैं हम
धरणि की जय माल हैं हम!

कुछ स्वर

मिथ्या है, सब मिथ्या जग में आज चतुर्दिक्,
केवल सत्य मनुज के उर की घोर घृणा है!
मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श हैं सकल,
जन पीड़न शोषण के हित जो उद्धृत होते!
केवल सत्य विषमताएँ हैं, प्रतिहिंसा है,
केवल सत्य अतृप्त पिपासा है, तृष्णा है!!

उबल रहा है द्वेष गरल से जन गण का मन,
भभक रहा है क्रोध अग्नि से मानव अंतर,
फटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
थूकेगा वह, उगलेगा दाहक लपटों को,
और जला देगा छल झूठ कपट के जग को,
मानव उर की निर्ममता को, नृशंसता को,—
भस्मसात् कर देगा जग के दुःस्वप्नों को!

(विवर्तन संगीत)

कुछ स्वर

छायाएँ हैं, छायाएँ आदर्श भयानक,
छायाओं को कुचलेंगे हम, आभासों को
रौंदेंगे पाँवों के नीचे, युग युग के मृत
संस्कारों को खोद, मिटा देंगे जन मन से!

(उत्तेजना द्योतक संगीत)

कवि

इसीलिए तुमने सम्मानित जीवन श्रम को
छोड़, अहेरी जीवन फिर स्वीकार किया है!—
देख रहा हूँ, आज संगठित मन युग युग का
सामूहिक जन बर्बरता में बिखर रहा है,
आदर्शों के स्वर्ग विचुंबी शिखर टूट कर
भू लुंठित हो रहे विवर्तन की आँधी में,
और नाश के घने अँधेरे के उतने ही
गहरे गर्तों में गिर, धरती के अंतर को
क्षत विक्षत कर रहे, चूर्ण हो!

जीवन की वे
पावन, मोहित, निभृत घाटियाँ, जो चिर करुणा,
ममता के स्वर्णिम प्रकाश से भरी हुई थीं,
जहाँ सभ्यता का क्रंदन न पहुँच पाया था,

पद मर्दित हो रहीं आज वे अविश्वास के
प्रतिहिंसा के दैत्यों के निर्मम चरणों से!!
मानव की निर्दयता उनके भीतर घुस कर
बोल रही तोपों के मुख से विकट नाद कर!!
भले बुरे, काले सफेद औ' सत्य झूठ के
सभी मान इस सतत बढ़ रही अँधियाली के
प्रलय ज्वार में डूब रहे हैं किमाकार हो!

(विप्लव सूचक वाद्य संगीत)

एकाकार हुए जाते हैं पाप पुण्य सब,—
मानव के अंतरव्यापी घन अंधकार से
घृणा द्वेष, अन्याय कपट, छल स्पर्धा हिंसा
आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य संगठन
मात्र सत्य है! बाह्य संगठन चरम लक्ष्य है!
बाह्य आसुरी एका ही सब कुछ है जग में,
अंतर्जगत, हृदय का एका,—केवल भ्रम है!
अंतर्मुख संगठन पलायन, बहलावा है!
संस्कृति? वर्गों के हित साधन की दासी है!
युग अपनी मुट्ठी में अणु संहार लिए है!!

विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दों में!
हिल हिल उठते आज चेतना भुवन मनुज की
भावी की आशंका से! अह, आज मनुज का
आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक!!

कुछ स्वर

कायर हो तुम कायर ! जो उपदेश दे रहे
नंगे भूखे लोगों को अध्यात्मवाद का !
कलाकार तुम नहीं, तुम्हारे दुर्बल उर में
वज्र घोष विद्रोह नहीं युग की प्रतिभा का !

खौल न उठता रक्त तुम्हारा घृणा क्रोध से
शोषित पीड़ित मानवता की नग्न व्यथा पर !
दया द्रवित भी नहीं दिखाई देते हो तुम !!
जग जीवन से विरत, निरत फूलों के वन में,
स्वप्न लोक में रहते हो तुम आत्मतोष के !

साथ नहीं दोगे तुम जन का युग संकट में
रिक्त कला, सुंदरता के थोथे आराधक !!
धिक् तुमको ! यह व्यक्ति अहं जन पथ कंटक है !

कवि

किंतु हाय, यह संघ अहं दुर्गम पर्वत है !!
भीतर भी हैं जनगण, भीतर ही जन का मन,
भीतर भी हैं सूक्ष्म परिस्थितियाँ जीवन की,
भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी में नहीं विभाजित है जो,
उसे नव्य संगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
बहिर्जगत में स्थापित करना है मानव को !

कुछ स्वर

चलो, बढ़ो हे भूजन, असिधारा के पथ पर,
सागर को मथने, पर्वत का शीश झुकाने,—
विजय ध्वजा स्थापित करने देवों के सिर पर!

रौंदेंगे हम परियों की चापों से गुंजित
इस वन फूलों की घाटी को! बिखरा देंगे
इसकी स्वप्न भरी पंखड़ियाँ धरा धूल में!
तोड़ मोड़ इसकी शोभा पल्लव शाखाएँ
लूटेंगे रस के मटकों-से भरे फलों को,
जो खगोल से, चेतन भुवनों से लटके हैं!

ध्वंस भ्रंश करदेंगे हम इस आदर्शों की
माया मोहक पंचवटी को, भटकाती जो
मानव मन को नित नव स्वर्ण मृगों के पीछे!
बहिर्जगत की लौहमुष्ठि फिर अंतर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आघातों से !....
नहीं रहेगा बाँस, बजेगी तब क्या वंशी?
हम युग विद्रोही हैं, आज हमारी इच्छा
सत्य न्याय की उद्घोषक है!—शेष झूठ है!

(प्रयाण संगीत)

चलो तात, बढ़ो भ्रात!
गौरव के गिरें शिखर
जन भू हो नव उर्वर,

जड़ता पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात,
करो घात!

(तानपूरे के स्वर)

कवि

धरती का निस्तल अवचेतन उमड़ रहा है
बर्बर युग के आवेशों से आंदोलित हो,
जग जीवन की क्रूर विषमताओं में फिर से
नव युग का मांसल समत्व भरने जन वांछित,—
मानव उर की मोह दंभ की वज्रशिला पर
शत निष्ठुर प्राकृत प्रहार कर प्रतिहिंसा के!

विस्मित हूँ मैं! आज उपेक्षित जन धरणी का
भू विस्तृत समतल जीवन जब विहँस चतुर्दिक्
प्रथम बार पल्लवित, लोक संगठित हो रहा
भौतिक स्तर पर, दैन्य दुःख से अखिल मुक्त हो:
छूट रहा जब करुण पराभव संख्याओं का
विगत युगों की निठुर नियति से भाल पर लिखित,—

प्रथम बार जब युग युग का भू कल्मष कर्दम
आज धुल रहा प्रणत रीढ़ जनगण के मुख से,
खड़े हो रहे जो अगणित पैरों पर फिर से
दैन्य गर्त से निकल, असंख्य भुजाएं फैला,
अँगड़ाई भरते प्रचंड जीवन लपटों-से,
अग्नि शस्य-से लहरा भू पर प्राण प्ररोहित,—

ऐसे युग में एक ऊर्ध्वदिक् दिव्य संचरण
जन्म ले रहा अंतरतम में युग मानव के,
निज अपूर्व चेतना शिखा से आलोकित कर
जीवन मन की अतल गहनताओं का वैभव,
सूक्ष्म प्रसारों की अतुलित दिग्व्यापी शोभा,—
मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर, जीवन का
स्वर्गिक रूपांतर कर, स्वर्णिम ऊँचाई से!
देख रहा मैं, स्वर्ग क्षितिज से उतर रही है
नव जीवन शोभा की प्रतिमा आभा देही,
नव संस्कृति की अंत:स्मित किरणों से मंडित,—
जो बहिरंतर ऐक्य साम्य मानव जीवन में
पुन: प्रतिष्ठित कर देगी, ऊर्ध्वग, भू व्यापक!
...किंतु कौन तुम, मौन ज्योति विद्रवित जलद-से
चिन्तन की मुद्रा में, यहाँ खड़े हो कैसे?
छोड़ साथियों को अपने,—किस अभिप्राय से?

वैज्ञानिक

किस आशा से? वैज्ञानिक हूँ मैं! इतना ही
मेरा परिचय! मैंने ही चंचल विद्युत् को
वाष्प रश्मि को बाँध, बनाया युग मानव की
क्रीता दासी! मैंने अणु का गर्व चूर्ण कर
भूत प्रकृति की मूल शक्ति को किया निछावर
मानव के चरणों में! आज मनुज स्वामी है
सिन्धु गगन का, देश काल का—निखिल प्रकृति का!
और अनेकों चमत्कार मैंने इस युग में

दिखलाए हैं यंत्रों के बल से मनुष्य को,
जो पिछले युग के मंत्रों तंत्रों के छल से
कहीं सत्य, विस्मयकारी हैं,—उन्हें गिनाना
आत्म प्रशंसा कहलाएगा, पातक है जो!

कवि

परिचित हूँ मैं सुहृद्, तुम्हारे अमर दान से,
व्याप्त तुम्हारी शुभ्र कीर्ति है दशों दिशा में,
रूपांतर कर दिया मनुज जीवन का तुमने
भूत परिस्थितियों में उसकी महत् क्रांति कर!

किन्तु पूछता हूँ मैं तुमसे, आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का? वह विद्युत् पर
शासन करता है, या विद्युत् वाष्प यंत्र ही
अधिकृत उसे किए हैं?—हाय, मनुज का अंतर
चूर्ण हो रहा आज दर्प से, बहिर्जगत की
अंध वीथियों में शत खोकर, लक्ष्य भ्रष्ट हो!
हृदय हीन कर दिया उसे जड़ भौतिकता ने!!
आज प्रकृति की मूल शक्ति देकर, मानव को
महानाश के पथ पर तुमने छोड़ दिया है!!

वैज्ञानिक

स्यात् बदल जाती जग की कटु अर्थ व्यवस्था,
बाह्य विषमताएँ पट जातीं युग जीवन की:
स्वार्थ लोभ के पैने पंजों से मानव पशु
मानव का मुख नहीं नोंचता रक्त सिक्त कर!—

लौह अस्थि पंजर में भीषण यांत्रिक युग के
मनुज हृदय की धड़कन पुनः सुनाई पड़ती!
क्रूर वाष्प विद्युत् के दानव मानवीय बन
शोषक से सेवक बन जाते जन समाज के!

कवि

यदि अंतः संगठित आज हो जाता युग मन,
मनुज हृदय का परिवर्तन, सार्थक हो सकता,
तो आदिम संस्कार उभड़ते नहीं धरा के,
युग जीवन का स्वर्णिम रूपांतर हो उठता!
हिम फुहार सी बरस सुनहली शांति चतुर्दिक्
शुभ्र हास्य से अभिषेकित करती भू प्रांगण,
जीवन मन के मूल्य निखिल अंतः परिणत हो
व्यापक, उर स्पर्शी बन जाते स्वर्ग क्षितिज छू!
अंतर् जीवन की ऊर्ध्वग महिमा से मंडित
नव चेतन हो उठती जड़ धरणी सुर प्रहसित!

वैज्ञानिक

अगर मुक्त हो सकती रचना शक्ति जनों की
समुचित वितरण हो पाता जीवनोपाय का,
सामाजिक संतुलन ग्रहण कर लेता भू श्रम
बँट जाता यंत्रों का बल आर्थिक समत्व में,—
स्वार्थ लोभ, अन्याय द्वेष स्पर्धा उठ जाते
भूव्यापी जन रक्तपात टल जाता युग का,
मानव के संयुक्त कर्म से स्वर्णिम चेतन
युग प्रभात हँस उठता भू तम को निरस्त कर!

कवि

और साथ ही अगर ऊर्ध्व चेता बन जाता
समदिक् मानव, अतिक्रम कर मन की सीमाएं,
मिट जाते खंडित भू जीवन के विरोध सब,
भौतिक नैतिक मान नियोजित होते युगपत्!
मानवीय संतुलन ग्रहण कर लेता जन युग,
यंत्रों की जलती साँसे ठंढी पड़ जातीं!
मनुज चेतना के पारसमणि स्निग्ध स्पर्श से
लोहे की निर्ममता स्वर्ण द्रवित हो उठती!

नई चेतना के प्रकाश में केन्द्रित मानव
पुनः सत्य का मुख विलोकता नए रूप से,
नई दृष्टि मिल जाती उसको जीवन के प्रति,
मिट जाती सब विगत युगों की घृणित क्षुद्रता!
बाह्य रुद्ध बौनेपन से निज ऊपर उठकर
ऊर्ध्व-मुक्त, अंतश्चेतन बन जाता जन मन,
अंतः स्थित, अंतः स्मित हो, अंतः कृतार्थ हो!

वैज्ञानिक

यही सोचता हूँ मैं भी अब! आज मुझे है
महत् प्रेरणा मिली ... मनुज अंतर्जीवी है!
स्पष्ट देखता हूँ मैं, अंतर का विधान ही
मानव है! अंतः संयोजित, ऊर्ध्व समन्वित!
आज मनुज मर गया! ... पराजित हो भीतर से
दौड़ रहा है वह बाहर, व्यक्तित्व हीन हो!
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है!

ढेर हो गया मानव का मन, यांत्रिकता से
चूर्ण हो गया मनुज हृदय! वह अब समूह है!
यंत्रों से चालित इच्छाओं का समूह है,
घृणा, द्वेष, स्पर्धा, तृष्णाओं का समूह है!
नारकीय कटुता, निर्ममता का समूह है,
अवचेतन की अंध वासना का समूह है!!

महत् व्यक्ति चाहिए आज सामूहिक युग में;—
दुर्निवार कामना किंतु है मुक्त हो उठी,
रौंद रही जो मानव के मिथ्याभिमान को!
आज निखिल विज्ञान शक्ति मानव हाथों में
विश्व प्रलय कारिणी बन गई, लोक विनाशक!
कापालिक बन गया मनुज है, जीवन बलि प्रिय,
मानव शव का पूजक, साधक भू श्मशान का!!

कवि

यद्यपि अब भी लहरों की रुपहली पायलें
बजतीं छम छम, खेतों में हँसमुख हरियाली
सोना उगला करती है, नव मुग्धाओं की
चल चितवन से स्वर्ग झाँकता, नव शिशुओं को
घेर स्वर्ग की परियाँ मँडराती लुकछिप कर!—
किंतु चतुर्दिक् गरज रहे युग संघर्षण में,
हिंस्र सभ्यता की हुंकारों में, जीवन की
मोहकता सब बिखर गई है!... मानस सूना,
जग फीका लगता है, मरुस्थल सा निरर्थ, मृत,—

जीवन इच्छा तुच्छ, रूप चल मृग तृष्णा सा,
आशा का इंगित निष्प्रभ, भूतल मरघट सा ! !

(आशाप्रद वाद्य संगीत)

अमृत पुत्र है पर मानव,—है व्यर्थ निराशा !
मांस पेशियाँ आज पर्वताकार खड़ी हो
भले रोकती हों अंत: केन्द्रित प्रकाश को,
फूट पड़ेगा वह स्वर्णिम निर्झर बन उर से !

पतझर आया है यह फूलों के प्रदेश में,—
झरने दो मानस के मुरझाए वैभव को,
अरुण किसलयों से, कलियों के अवगुंठन से
झाँक रहा फिर नवल रुपहला आशा का जग !

फिर से वहिरंतर संयोजित होगा मानव,
पुन: ज्ञान विज्ञान समन्वित होगा जीवन !
व्यक्ति समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर
बढ़ते जाएंगे विकास के स्वर्णिम पथ पर !
वहिर्जगत के शिखर ज्वार पर आरोहण कर
नव्य चेतना उतरेगी किरणों से मंडित,
सत्य अहिंसा होंगे भावी के पथ दर्शक,
विचरेगी मानवता फूलों के प्रदेश में
नव संस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोषित !

(हर्ष सूचक वाद्य संगीत)

वैज्ञानिक

स्वप्न नहीं है यह, निःसंशय मूर्त सत्य है!
मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अंतर्मुख
आदर्शों के नित नूतन ऊर्ध्वग प्रकाश को
नवल वास्तविकता में बाँधेगा जीवन को,
मानवीय होगी निश्चय वास्तविकता वही!

कवि

तुमसे यह सुनकर कृतकार्य हुआ अब जीवन!
आओ, हम दोनों बहिरंतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलों के प्रदेश की
नव युग जीवन में परिणत कर, सत्य बनाएँ!

(जनरव : रणवाद्य)

देखो, लौट रहे हैं जनगण श्रांत क्लांत मन,
शोणित पंकिल तन,—धरणी को रक्त पूत कर!
आज प्रार्थना जनश्रम मिलकर ज्योति शक्ति से
शांति धाम, जन मंगल ग्राम बनाएं भू को!

(समवेत गीत)

मंगलमय पूर्ण काम,
जन मन का लो प्रणाम!

द्वेष रहित हो भू मन
शोभा स्मित जन जीवन,

सृजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम!
विश्व शांति बने ध्येय,
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जनवास, ग्राम!

शांत नील विश्व गगन,
शांत हरित सिन्धु गहन
शांत नगर पर्वत वन,
जन भू हो शांति धाम!

५ मार्च १९५१)

उत्तर शती

विंश शती का विश्व सभ्यता के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। प्रस्तुत रूपक में उसके पूर्वार्ध के संघर्ष संग्राम का संक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध के आशा कल्याणप्रद क्रम विकास की ओर संकेत किया गया है। उत्तरशती मानव जगत में नवीन स्वर्णयुग का समारंभ कर सकेगी, इसमें संदेह नहीं।

पुरुष स्वर

स्त्री स्वर

सन् १९५१

जनगण

(समवेत गान)

कौन कौन तुम निष्ठुर हासिनि ?
महाकाल के मुक्त वक्ष पर
नग्न नृत्य करतीं उन्मादिनि !

दक्षिण कर पीयूष पात्र स्मित
वाम हस्त विष ज्वाल विकंपित,
विचर रही निर्मम अबाध तुम
विश्व विषादिनि, लोक प्रसादिनि !

टूट रहे युग युग के बंधन
गिरते मुकुट महल सिंहासन,
रणन झनन बज बज उठता रण,
जय जन मन जीवन उल्लासिनि !

सिंधु क्षितिज अब रक्त तरंगित
अरुणोदय होने को निश्चित,
जय, विनाश के अतल गर्भ से
नव युग जीवन ज्वार विकासिनि !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

विंश शती यह, अपने वज्र मुखर चरणों से
रण झंकृत कर युग के जीवन का कंटक पथ,
दिग् घोषित करती है अपना महिम आगमन
शत शत तोपों के गर्जन से अभिनंदित हो !

(तुमुल वाद्य ध्वनि)

घोर युद्ध के साथ धरा जन के जीवन में
कर प्रवेश, भर दारुण क्रंदन, भीषण गर्जन,
प्रलय वलाहक सी छायी यह जग के नभ में
तड़ित् कटाक्षों से विदीर्ण कर विश्व दिगंतर !

महासमर छिड़ चुके धरा पर हैं तब से दो,
रक्त तरंगित कर जन के जीवन का सागर,
रुधिर पंक से रँग धरती का आहत तन मन,
दैन्य दुःख ईर्ष्या स्पर्धा के रक्त बीज बो !
मँडराते रण वायु यान मंथित कर अंबर
भीम काय दानव-से फैला मृत्यु पंख-निज,
हरित भरित धरणी के जन उर्वर अंचल में
बरसा कर पावक प्रचंड खर नरक कुंड का !
किमाकार चल पर्वत शिखरों से टकराकर
तुमुल नाद से चीर गगन की नील शांति को
घिरते विद्युत् घन विनाश के, युग के नभ में,
महा मरण की छाया डाल धरा के मुख पर !

(करुण भीत वाद्य ध्वनि)

स्त्री स्वर

बढ़ता जाता संघर्षण पर कटु संघर्षण,
उद्वेलित वारिधि सा विश शती का मानस
आलोड़ित हों युग आवेशों के शिखरों में
डुबा रहा भू के तट, नव जीवन प्लावन भर !

निखर रही है नई धरित्री युग कर्दम से
निखर रहे हैं नए देश प्राणों से मुखरित,
लोक साम्य की महत् प्रेरणा से आंदोलित
उमड़ रही जन मानवता जीवन कल्लोलित !

(हर्ष सूचक वाद्य ध्वनि)

जूझ रहे हैं लौह संगठन युग जड़ता को
वज्र मुष्ठियों के प्रहार से जागृत करने,
नव शोणित से वैर-स्नात करने भू का मुख
परिवर्तित करने जग के कटु मान चित्र को !

टकराती हैं नव्य चेतना की हिल्लोलें
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर,
हाहाकारों से, जयघोषों से समुच्छ्वसित
विश्व क्रांति की ओर सतत आरोहण करतीं !

(द्रुत तीव्र वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

रक्त क्रांति के शोणित के सागर से उठ कर
चमक रहा है लोहिताक्ष नक्षत्र नवोदित
युग के नभ में अंगारक सा महत् महोज्वल,
भूमि पुत्रवत्, मातृधरा के वैभव से स्मित,—
युग युग के शोषित जनगण का स्वर्ग भूतिप्रद !
नव्य लोक वह, जिसके श्रेणि मुक्त समतल में
विचरण करती वर्ग हीन मानवता निर्भय,
नव शोगित से स्पंदित, नव शिक्षा से जागृत,
विगत विभेदों, घृणित निषेधों से विमुक्त मन,—
खींच धरा के प्राणों से नव युग का यौवन
निर्मित करती वह नव भू जीवन, जन संस्कृति,
अभिनव आशाऽकांक्षाओं, ध्येयों से प्रेरित !

तरुण रक्त में उसके अभी नहीं आ पाया
वयस सुलभ, अनुभूति गहन संतुलन ज्ञान का,
गत युग के संस्कार नहीं मिट सके मनस् के,
आवेगों की नई धरा वह, ऊष्ण, बहिर्मुख,—
जिसे चाहिए जीवन मंथन, अंतर्दर्शन !

फैल रही है उसकी आभा, जग जीवन के
जाति ग्रथित तम को सतरंगों में रंजित कर,
विजयी अरुणध्वजा में फहराता प्रभात नव,
स्मित प्रकाश की किरणें बिखरा जन प्रांगण में !
वहाँ सभ्यता मध्य युगों की, मध्य वर्ग की

रूढ़ि रीतियों के पाशों से मोह मुक्त हो
जीवन पट बुन रही विशद जन मानवता का
नव शोभा सुंदरता, नव गौरव गरिमा के
स्वर्ण रजत ताने बाने से,—नव मूल्यांकित !
अभिवादन इस भव्य देश का, वृद्ध जगत के
साथ बढ़े वह, विश्व शांति का पोषक बन कर !

स्त्री स्वर

वयस शुभ्र हिम शिखरों के उस पार, पड़ोसी
ज्ञान वृद्ध प्राचीन चीन की महाभूमि भी
युग परिवर्तन की करवट ले, नव्य राष्ट्र में
उधर लोक संगठित हो रही, तरुण रुधिर स्मित,
नव जीवन से गुंजित, नव प्राणों से मुखरित,—
रक्त जिह्व ध्वज फहरा जन आशाऽकांक्षा का,
युग प्रभात सूचक ! जाग्रत् एशिया अब महत् !

गाते गरज गरज जनगण इस भूमि खंड के
वंश प्ररोहों-से उठ भू का वक्ष चीरते,—
अग्नि शालि से लहरा जीवन की लपटों में,—
जय हो जनता की जय, जन मानवता की जय !

(जन गीत)

युग प्रभात जन लाए, जन लाए !
सिन्धु तरंगों गिरि शृंगों पर
विजय ध्वजा फहराएऽ !

बढ़ते अगणित पग जब मग पर
उठते अगणित भुज जब ऊपर,
दते पथ मरु पर्वत सागर,
सादर शीश नवाए!

मिटा युगों का दैन्य त्रास तम
कटा निखिल मन का मोहक भ्रम.
जग जीवन गौरव जन का श्रम
नव प्रकाश दिखलाए!

आज धरा श्रम सकल एक हो
मात्र दासता के बंधन खो,
अग्नि बीज नव जीवन के बो
स्वर्ण शस्य वन छाए, लहराए!

(तानपूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

भौगोलिक ही नहीं, सांस्कृतिक धर्म बंधु भी
भारत का जो रहा पुरातन, अक्षय करुणा
ममता के स्वर्णिम सूत्रों में बँधा चिरंतन:
भारत के अंतः प्रकाश से ज्योतिर्मज्जित
जिसके शिखर गहन पथ विपणि हुए चिर पावन,
महाबोधि की प्रीति द्रवित संस्कृत वाणी से
जिसके पुर गृह द्वार रहे नित अंतर्मुखरित,
ऐसे निज आत्मीय सखा का पुनः हृदय से
अभिवादन करते भारत जन, उससे नूतन

युग मैत्री, सद्भाव, संधि स्थापित करने को
समुल्लसित मन,—सुहृद् अभ्युदय के गौरव से
उन्नत मस्तक !—

वंधन मुक्त, स्वतंत्र,—आज वे
लोक क्रांति के लिए स्वतः भी जाग्रत्, उद्यत !
गौतम से गांधी तक सत्य अहिंसा का जो
रहे अमर संदेश सुनाते क्षुधित जगत को,
मानव जीवन मन में अंतःक्रांति के लिए
मौन प्रयासी, विश्व शांति के चिर अभिलाषी
भारत के सुत, नव्य चेतना से अंतःस्मित,
नव मानवता के स्वप्नों से अपलक लोचन
जाग रहे, विस्मृत युग के स्वर्णिम खँडहर-से,
भू जीवन की नवल कल्पना से उन्मेषित
स्वर्गिक पावक की लपटों-से, लोक यज्ञ हित !

(जागरण वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

यह सच है, जिस अर्थ भित्ति पर विश्व सभ्यता
आज खड़ी है, बाधक है वह जन विकास की,
उसमें दीर्घ अपेक्षित है व्यापक परिवर्तन
भू मंगल हित ! धनिक श्रमिक के बीच भयंकर
जो शोणित पंकिल खाई है वर्ग भेद की
उसे पाटना है इस युग को आत्म त्याग से
सहिष्णुता, शिक्षा समत्व से,—और नहीं तो,
सत्याग्रह से, शत शत निर्भय बलिदानों से !

जिससे भू का रक्त क्षीण शोषित विषण्ण मुख
फिर प्रसन्न, जीवन मांसल हो, युग शोभन हो !

उत्तर शती अवश्य यंत्र युग के विप्लव में
सामंजस्य नया लाएगी जन मन वांछित,
जिससे शिक्षा, संस्कृति, सामूहिक विकास का
पथ प्रशस्त हो जाएगा युग मानव के हित !

(घंटों और वाद्यों की करुण ध्वनि)

स्त्री स्वर

अर्धशती अब बीत रही है, घनन् घनन् घन्,
घड़ियालों का क्रंदन उसको विदा दे रहा !
अर्धरात्रि की नीरवता को चीर झनन झन
झिल्ली का कातर स्वन उससे विदा ले रहा !
शत शत आहत इच्छाएं, असफल तृष्णाएं
उसके चिर कुंठित अंतर में मौन सो रहीं,
शत मुकुलित आशाएँ, अभिनव अभिलषाएं
भावी के स्वप्निल पलकों में जन्म ले रहीं !

(मंद्र वाद्य ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

बिदा, बिदा, हे पूर्वशती, गत समरों की स्मृति
मिटे तुम्हारे सँग मन से, भीषण छायाकृति !
मुक्त रुपहले पंख खोल, बरसा स्वर्णिम स्मिति
विचरे भू पर शांति, शांति प्रिय हो जन संसृति !

(द्रुत वाद्य ध्वनि)

लोक क्रांति की अग्रदूतिके, तुम झंझा पर
चढ़कर आई, मंथित करने जीवन सागर!
भूमिकंप सी, ध्वंस भ्रंश, गर्जन तर्जन भर
धूलिसात् कर गई युगों के सौध स्मृति शिखर!
स्वस्ति, स्वस्ति! अब नव निर्माण करें भू के जन
ले जाओ अपने संग जग का दारुण रोदन!

(गभीर वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

इन पचास वर्षों के निबिड़ कुहासे से कढ़
सन् इक्यावन मौन बढ़ रहा धीरे सन्मुख!
अर्धपक्व केशों के उसके प्रौढ़ भाल पर
चिन्तन की रेखा है अंकित, नवल क्षितिज सी!
रजत घंटियों की कल ध्वनि स्वर्णिम आशा के
पंखों में उड़ अभिनंदन करती है उसका!

(घंटियों की हर्ष ध्वनि)

स्त्री पुरुष स्वर

स्वागत नूतन वर्ष, शिखर तुम विंश शती के,
लाओ नूतन हर्ष, नवागंतुक जगती के!
कबसे अपलक नयन प्रतीक्षा करते भू जन,
विश्व शांति में लोक क्रांति हो परिणत नूतन!
भर जाओ स्वर्णिम समत्व जग जीवन रण में,
नव जीवन के सृजन स्वप्न जनगण के मन में!

लहरों के शिखरों में उठती जीवन आशा,
गिरि शृंगों में चढ़ती जन भू की अभिलाषा !
खोज रहीं गत प्रतिध्वनियाँ नव मन की भाषा,
जन मानवता जीवन की नूतन परिभाषा !
आओ, जन सारथि बन, कर्दम स्तंभित युग रथ,
पंथ बाधाएं लाँघ, करो हे पूर्ण मनोरथ !

(आशाप्रद वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

रवि के चारों ओर धरा के पूर्ण पंचदश
संक्रमणों के बाद वर्ष नव उदित हो रहा
विश्व मंच पर, पार कंटकित कर आधा पथ,
अनुभव गहन हृदय मन ले सागर सा निस्तल !
नव आशा की किरणों से स्मित आनन श्री ले,
सोच रहा वह उच्च स्वरों में जल प्रपात सा :—

(गभीर वाद्य ध्वनि)

सन् इक्यावन

भाग्यवान् हूँ मैं ! विराट् इस विंश शती के
चिर महान युग में जो नूतन जन्म ग्रहण कर
पुनः आ सका हूँ अब सन् इक्यावन बन कर !
विश्व सभ्यता आज नवल इतिहास रच रही,
जन संस्कृति का आज धवल अध्याय खुल रहा !
कितने ही परिवर्तन आए भू जीवन में,
कितने ही संघर्ष और संग्राम छिड़ चुके;

वर्बर युग से आज यंत्र युग में मानवता
लड़ती भिड़ती अंधकार में राह खोजती,
सागर सी गर्जन तर्जन उद्वेलन भरती
पहुँच रही अब ऐसे व्यापक संगम स्थल पर
जहाँ उसे निज पिछले जीवन का मंथन कर
पिछले आदर्शों मूल्यों का विश्लेषण कर
लोक सभ्यता निर्मित करनी है भू विस्तृत
विविध त्रिगत संस्कृतियों का कर महत् समन्वय

(प्रगति सूचक वाद्य संगीत)

महाभाग हूँ मैं! महान् है विंश शती यह!
धन्य धरा जीवी युग के, जिनके कंधों पर
भावी मानवता का स्वर्णिम भार धरा है!
वृहद् ज्ञान विज्ञान किया संचय इस युग ने,
वाष्प तड़ित्, वहु रश्मि शक्ति इसके इंगित पर
नाच रही हैं,—आज महत् अणु सिद्धि प्राप्त कर
उसने मौलिक भूत शक्ति का स्रोत पा लिया :
विजयी हुआ मनुज का मन जड़ भूत प्रकृति पर,
आज अनुचरी बनी स्वामिनी मनुज नियति की!

(विजय संगीत)

भू रचना का स्वर्णिम युग हो रहा अवतरित
पुनः विश्व प्रांगण में कब से लोक अपेक्षित!
आज मनुज को खंड युगों से ऊपर उठकर
रूढ़ि रीति गत आदर्शों के कंकालों को

पद लुंठित कर, युग वैभव की सुदृढ़ भित्ति पर
मनुष्यत्व के व्यापक तत्वों से नव जीवन
। नव संस्कृति निर्मित करनी है भू जन के हित!
युग युग से कलुषित भू का तन भाव-स्नात कर
वेष्टित करना है उसको नव श्री शोभा में
जीवन के मन के गौरव में आत्म द्रवित कर!
नव्य चेतना के आलिंगन में बँध जनगण
जिससे फिर संगठित हो सकें बाहर भीतर :
गूंज उठे संहार सृजन का गीत मुक्त स्वर :—

(समवेत गान)

झरें, झरें
जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
चिर विदीर्ण चिर विवर्ण
नव युग के प्रांगण में
मरें मरें!

अर्धशती रही बीत
भावी में लय अतीत,
दन्य ताप, रक्त पात
हरें, हरें!

हँसता जीवन वसंत
कुसुमित जग के दिगंत,
जन हित वैभव अनंत
भरें, भरें!

जीर्ण शीर्ण विश्व पर्ण
मरें, मरें !

(मेघ घोष और रण वाद्य)

सन् इक्यावन

किंतु हाय, क्या देख रहा मैं, विश्व क्षितिज में
उमड़ घुमड़ घिर रहे चतुर्दिक् मेघ भयानक !
अट्टहास करती शंपा, रण भीषण गर्जन
भरते शोणित के घन, दिङ् मंडल विदीर्ण कर !

आज तीसरे विश्व युद्ध की भय आशंका
गरज रही इन भीम घनों में हृदय विदारक !
राष्ट्रों के कटु स्वार्थ, सत्व धन बल की तृष्णा
समर संगठित पुनः हो रही भू भागों में ! !
अभी अभी फ़ासिस्त शक्ति के युग दानव को
लुंठित, दर्प दलित करने जो देश धरा के
एकत्रित थे हुए प्रगति का व्यूह बना कर,
आज परस्पर के भय दुःस्वप्नों से पीड़ित
महा प्रलय के हेतु दीखते रण तत्पर वे ! !

पूंजीवाद उठा हिंसा का धूम्रकेतु ध्वज
लिए लोक संहार घोर अणु मुष्ठि में विकट
फिर ललकार रहा धरती की हरित शांति को,
जन समुद्र के उर की नभ चुंबी लहरों पर
दुरभिसंधि से शासन करने ! हाय, दुराशा ! !

लोक राष्ट्र भी भूल वृहद् जन साम्य योजना
आज नवल साम्राज्यवाद की मद लिप्सा से
बना रहे हैं सैन्य शिविर निज जन तंत्रों को,—
घूम रही है धरा समर के घोर भँवर में!
दम साधे है खड़ा भयंकर अणु का दानव
भूव्यापी संहार, प्रलय हुंकार छेड़ने!!

क्या भारत इस भू विभीषिका से हो जागृत
बहिरंतर संगठित नहीं होगा इस युग में?
आत्म शक्ति का, विश्व चेतना का प्रतीक बन,
सौम्य, शांत, भू कर्मनिष्ठ, जन मंगल कामी,
मनुष्यत्व का प्रतिनिधि, दृढ़, निर्भीक, अहिंसक!

रूढ़ि रीतियों की इस मध्य युगीन धरा को
कौन पुनश्चेतन कर सकता आत्म दान से
जनगण के अतिरिक्त, भूमि के अधिकारी जो,
गौरव गरिमा के वाहक इस महादेश के?
नव जन जीवन के भूव्यापी प्राणज्वार में
निश्चय हो सकते निमग्न ये अर्थ शक्ति रण
वर्ग समन्वय में नव, शोणित रहित क्रांति से!

(उद्‌बोधन संगीत)

कौन सुनेगा पर मेरे ये तूती के स्वर
इस भीषण तर्जन गर्जन, कटु चीत्कारों के
निर्मम युग में, छाया चारों ओर जहाँ है
भय, संशय, नैराश्य, विषाद, उपेक्षा, निंदा
ईर्ष्या, स्पर्धा, अहंकार,—खर लौह शूल सा!

देख चुका हूँ अर्धशती अब, क्रमण कर चुका
वर्ष पंचदश, दुःसह युग परिवेश से व्यथित,
किसी तरह मैं! सुहृदों के बाने में मुझसे
मिले अनेकों लोग, देश, भू राष्ट्र प्रतिष्ठित,
जन संस्थाएं, लोक संघ बहु, व्यक्ति कनक घट,—
आत्म वंचना, द्वेष, कलह, स्वार्थों से पीड़ित,
पर उन्नति से क्षुब्ध, लुब्ध निज बौने बल पर!

कृमियों का उत्पात विटप ज्यों वट का सहता,
झेले हैं मैंने निष्ठुर स्पर्धा के दंशन
जीवन मन से कुंठित सूने अस्तित्वों के!
किंतु नहीं मैं भूल सका, मैं महाकाल का
अमर पुत्र अवतरित हुआ हूँ संधिस्थल पर,
पार अनेकों कर वन पर्वत मरुथल सागर
कंटकमय, खंदकमय,—झंझावात तरंगित,
विनय मूक मैं चलता निर्जन शांति मार्ग पर
क्रीड़ा निरत कलभ सा, लाँघ शिखर युग के बहु!

कैसे तुम से कहूँ, आज मैं अर्धशती के
ऊर्ध्व शिखर पर खड़ा मौन क्या सोच रहा हूँ!
उद्वेलित करतीं मुझको शत भाव तरंगें,
प्रेरित करते रश्मि स्पर्श स्वप्नों के उर को!

याद मुझे आतीं फिर फिर उस महापुरुष की,
अभी अभी जो रजत शुभ्र चेतना शिखर सा
धरती पर विचरा था स्वर्ग विभा से मंडित,—
अपनी मंगल स्मिति से दीपित करता भूपथ!

दैन्य दासता के युग युग के बंधन जिसने
भारत के काटे: दुर्धर साम्राज्यवाद से
हँस हँस लोहा ले, अजेय अस्त्रों शस्त्रों की
हिंस्र शक्ति को किया पराजित सत्याग्रह से,
सौम्य अहिंसा के सामूहिक मंगल बल से!

एकाकी, निज आत्मशक्ति से जिसने निर्भय
भौतिकता यांत्रिकता के दुर्मद असुरों को
किया निरस्त, जगत को दे संदेश सत्य का,
शांति, अहिंसा का, श्रेयस्कर आत्मिक बल का!

आंदोलित जन-युग दर्पण है मानव मन का,
शांत उसे कर सकते केवल उस युग नर के
सत्य अहिंसा के आदर्श, अमर, युग पूरक!
सदाचार की रजत रश्मियों से शुभ मंडित,
विनय त्याग नय शोभित, लोक कर्म अनुप्राणित,
सूर्य शुभ्र व्यक्तित्व एक दिन आत्म पुरुष का
भू मानस में स्वतः प्रतिष्ठित होगा निश्चय!

जीवन मन की क्षुधा तृषाओं की चीत्कारें,
अर्थ शक्तियों, संस्कृति धर्मों के संघर्षण
विश्व ऐक्य में, लोक साम्य में बँध जाएँगे
युग मानव में संयोजित, व्यक्तित्ववान् हो!
धरती का विस्तार हुआ ही इस प्रकार है
कर सकते संहार नहीं भू जीवन का जन!

प्रेम मनुज को करना होगा भ्रातृ मनुज से,
देशों को देशों से, तंत्रों को तंत्रों से,
ईश्वर का आवास जगत, मंदिर है जन तन,
रूपांतर होगा ही अधोमुखी तृष्णा का
अमृत चेतना में, अंतर्मुख, ऊर्ध्व गमन प्रिय !
गूंज रहे हैं अभी देश, पुर पथ, गिरि सागर
उस युग मानव की महिमा के जय निनाद से,
गूंज रहीं प्रतिध्वनियाँ कभी न मिटने वाली !

(वाद्य संगीत : जन गीत)

जय विराट् युग मानव जय, जय !
स्वर्गदूत तुम उतरे भू पर
आत्म तेज में विचर निभय !

सात्विकता के रजत शुभ्र तन
साधन तप के स्वर्ण शुभ्र मन,
नव युग जीवन के प्रतीक बन
विहँसे तुम, उर के अरुणोदय !

रक्त पंक इस मर्त्य धरा पर
प्रथम बार लाए तुम निर्जर,
रक्त हीन रण जन श्रेयस्कर
जिससे हो भू स्वग अभ्युदय !

(करुण वाद्य संगीत)

सन् इक्यावन

हा दुर्दैव, अतीत कथा सी अर्धशती अब
हुई व्यतीत, बनी इतिहास! किंतु भूमन का
उद्वेलन रुक सका नहीं! उच्छ्वसित सिन्धु सा
पीट रहा मुख युग जीवन दारुण हाहा कर
मानव उर की बज्र दंभ पाषाण शिला पर!

उतर नहीं पा रही जनों में नव्य चेतना
भू रचना के उर्वर स्वप्नों से उद्दीपित,
विजय नहीं पा सका मनुज निज भौतिक मद पर
राष्ट्र वर्ग के, जाति वर्ण के रिक्त गर्व पर!!
विंश शती का महाज्ञान विज्ञान प्राप्त कर
महानाश के अंध गर्त की ओर सभ्यता
आज बढ़ रही हृदय शून्य हो, भ्रमित बुद्धि हो!
तर्कों वादों वर्गों के भेदों में खंडित,
यंत्रों से शोषित, जन तंत्रों में आंदोलित,
क्षुधा तृषा श्रम पीड़ित, तमस अविद्या मूर्छित,
रेंग रहा युग भग्न रीढ़ पर आहत अहि सा
घूम घूम फिर घोर वृत्त में महानाश के!!
बँटा विरोधी शिविरों में है मानव जीवन,
विश्व शक्तियों का है हुआ विभाजन निर्मम;—
लोक समन्वय, विश्व ऐक्य होगा ही निश्चय
उत्तरार्ध कर रहा प्रवेश नया युग जग में!

(आशाप्रद वाद्य संगीत)

जिस युग ने हैं दिए मार्क्स-से भौतिक चिन्तक,
श्री अरविन्द सदृश द्रष्टा, भू स्वर्ग विधाता,
लेनिन गांधी से जन अधिनायक, जो निश्चय
भिन्न परिस्थिति, भिन्न प्रकृति मानव पदार्थ पा,
निज क्षेत्रों के रहे विधायक, जन उन्नायक,—
नव युग के पतझर वसंत-से, नव बीजों से
गर्भित, नव जीवन से मुकुलित,—महाप्राण मन !
जिस युग में वैभव अपार संचित कोषों में,
देश काल को किए ज्ञान विज्ञान हस्तगत,
वाहित करती विद्युत् क्षण में निखिल विश्व मन
जिस युग में, वह आत्म पराजय से क्यों पीड़ित ?
क्यों उसमें संतुलन नहीं आ सका अभी तक ?
क्या है इसका कारण ? क्यों अधिविश्व क्रांति है
छाई भू जीवन, युग मन में ? शोचनीय यह !!

(स्वप्नवाहक वाद्य संगीत)

देख रहा मैं मनःक्षितिज में युग स्वर्णोदय
मानव भावी का, अभिनव किरणों से दीपित,
विंश शती का जनसुख-मांसल उत्तर यौवन
निखर रहा निज भौतिक आध्यात्मिक वैभव में !

धीरे धीरे अर्थ व्यवस्था में धरणी के
युग वांछित संतुलन आ रहा, भौतिक सत्ता
मानवीय बन, नव चेतन आकार धर रही !

पूंजीवादी लोक साम्यवादी देशों के
वातायन खुल रहे भाव विनिमय के व्यापक,
हृदय द्वार खुल रहे, विचारों से नव मुकुलित,
भू जीवन के आवागमन हेतु दिग् विस्तृत !

नव युग के आर्थिक नैतिक विधान के युगपत्
नव निर्मित हो जाने पर, नव मानवता की
स्वर्ण चेतना ध्वजा उड़ रही गिरि शिखरों पर,
सागर के उल्लसित वक्ष, प्रहसित अंबर में !

(विजय वाद्य संगीत)

दैन्य दुःख मिट गए, भर गए धरणी के व्रण,
आनन की धुल गई कलुष कालिमा युगों की,
मानस वैभव से मुकुलित हो उठे दिगंतर,
संस्कृति के सोपानों पर आरोहण करता
जनगण का मन, देवों का ऐश्वर्य बँटाने !—
समुल्लसित गाते नर नारी भू जीवन के
विश्व प्रीति के गीत, भाव स्वप्नों से झंकृत !

(वाद्य संगीत तथा जन गीत)

निखर रहा मनुज नवल,
निखर रहा मनस् नवल !
जीवन के वारि चपल,
विहँस उठा हृदय कमल !

खुले रुद्ध लोक द्वार,
मुक्त वचन जन विचार,
वरस रही आर पार
ज्योति प्रीति धार तरल !

श्री हत गत सौध धाम,
कुसुमित जन वास ग्राम,
मानवता पूर्ण काम
युक्त धरणि हुई सकल !

नवल चेतना प्रकाश,
जीवन मन का विकास,
मानवीय भू निवास,
बरस रहा जन मंगल !

(तानपूरे के स्वर)

सन् इक्यावन

उतर रही अधिमन के नभ से नव्य चेतना
स्वर्ण शुभ्र ऊषा सी, जन मानस धरणी पर,
चीर रहे हैं रश्मि तीर शत ज्वाल स्पर्श से
भू जीवन के जड़ तम को, स्वर्णिम चेतन कर !

उतर रहे स्वर्दूतों-से स्मित पंख खोल कर
नव आशा उल्लास, ज्योति सौन्दर्य, प्रीति सुख !
बरस रही है रजत मौन स्मित शांति चतुर्दिक्,

जन मंगल, श्रद्धा विश्वास,—शुभ्र पावनता,
मानव भू पर,—देवों के आशीर्वाद सी !
आज प्रसन्न हुआ घटवासी मानव ईश्वर
मानव कर्मों से, जग जीवन व्यापारों से !

(प्रसन्न गभीर वाद्य संगीत)

यह परिवर्तनशील जगत है लीला का स्थल
दिव्य चेतना का, जो अंतरतम में निवसित,
मन, जीवन, जड़ भूत अंश हैं उसके निश्चय,—
वह सब में है व्याप्त और सब से है ऊपर !—
बाह्य उपकरण उपादान ये मात्र प्रकृति के
चिर विकास क्रम में हैं, सभी परस्पर आश्रित,
एक दूसरे के पूरक, पोषक, उद्धारक !

जड़ चेतन की इस विराट् क्रीड़ा के स्वामी
मानव के घटवासी भी हैं रे निःसंशय,
प्रस्तुत होता लोक-पात्र जब धारण के हित
अंतस्तल से उठता ज्वार नवल वैभव का,
चेतन कर जो मन के जीवन के साक्रय स्तर
मज्जित करता भूत सृष्टि को, नव कल्पित कर !
भूतों की अंतर पुकार से सहज विद्रवित
उन्हें उठाता आत्मिक मन के सोपानों पर
अभिनव जीवन संबंधों, मन के मानों में
उन्हें पुनः परिवर्तित, परिवर्धित, विकसित कर !

धन्य अभेद्य रहस्य सृजन का ! विंश शती भी

महाकाल के अतल वक्ष स्पंदन से प्रेरित
उठ उत्ताल क्षितिज चुंबी भूधर तरंग सी,
प्लावित करती जीर्ण धरित्री के विषण्ण तट
जन युग की अद्भुत विराट् जीवन शोभा में,—
सिन्धु मग्न कर विगत युगों के म्लान चित्र को !

(युग परिवर्तन संगीत)

मंगलमय है जीवन की केन्द्रीय चेतना,
जन मंगल का धाम बने यह मानव धरणी !
सृजन शील हो मानव मन,—स्रष्टा निश्चय ही
निर्माता से है महान्, जो सूक्ष्म द्रव्य से
बुनता नव सौन्दर्य प्रीति आनंद के वसन
मानव आत्मा के हित,—शिल्पी स्वर्ग का अमर !

संयोजित हों मानव के आदर्श कर्म नित,
संयोजित वाणी विचार आचरण जनों के,
अंतः संयोजित व्यक्तित्व बने मानव का,
श्री शोभा का अमर धाम हो मनुज लोक यह !

(मंगल संगीत : समवेत गान)

मंगल, जन मंगल हो !
मंगल मय का निवास
मानव हृत् शतदल हो !

प्रीति ग्रथित हों जन जन,
ज्योति द्रवित जनगण मन,

वैभव नत जन जीवन,
शोभा स्मित भूतल हो !

नारी नर हों समान
कर्म निरत, लोक प्राण,
जग को दें आत्म दान
जन हित जन श्रम फल हो !

शांत हो समर प्रमाद,
शांत रिक्त तर्कवाद,
जय जीवन हो निनाद,
मुखरित दिङ् मंडल हो !

३१ दिसंबर, १९५०)

शुभ्र पुरुष

'शुभ्र पुरुष' महात्मा जी के तपःपूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्मा जी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण हैं। प्रस्तुत रूपक उनकी जन्म तिथि के अवसर पर लिखा गया था। यह जनगण मन अधिनायक गांधी जी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धांजलि है।

स्त्री पुरुष स्वर

जनगण

(उत्सव वाद्य संगीत)

पुरुष स्वर

राजहंस भरते उड़ान शुचि शुभ्र चतुर्दिक्
श्वेत कमल की पंखड़ियाँ बरसा जन पथ पर,
स्वर्गिम पंखों की शत उज्वल आभाओं से
नव स्वप्नों की दिव्य सृष्टि कर भू मानस में !
विचरण करतीं व्योम कक्ष में सुर बालाएं
ज्योत्स्ना का रुपहला रेशमी अंचल फहरा,
हँसता शारद चंद्र घनों के अंतराल से
शुभ्र चेतना ज्वार उठा जीवन सागर में !

रजत घंटियाँ बजतीं अंबर में कलध्वनि भर
झरते अश्रुत स्वर ताराओं की वीणा से !
हिम शिखरों पर शशि किरणों की छायाएं कँप
फहरातीं शत रंग ग्रथित बंदनवारों सी !
आज चिर स्मरणीय दिवस है शुभ्र पुरुष की
वर्षगाँठ का : धरती पर अवतरित हुआ जो
नव युग की आत्मा बन कर जन मंगल के हित !
सदाचार के शुभ्र चरण धर जिसने भू को
फिर चिर पावन किया अमर पद चिह्नों से निज !
जन्मोत्सव हैं आज मनाते हर्षित सुर नर
विश्व प्रकृति के प्रांगण में स्मित पुष्प वृष्टि कर !

जय निनाद से मुखरित है जन भारत का नभ,
फहराता है मुक्त तिरंगा रंग तरंगित,—
मंगल गायन वादन से गुंजित है भू तल!

(मंगल वाद्य ध्वनि : समवेत गान)

जय जय हे, युग मानव, जय हे!

स्वर्ग शिखर से विचरे भू पर
आत्मतेज मय तुम निर्भय हे!

कोटि जनों के कंठ गान बन
कोटि मनों के मर्म प्राण बन
जन जीवन प्रांगण में लाए
तुम नव अरुणोदय हे!

सत्य खोजने आए जग में
स्वर्ग लुटाने जन के मग में,
देवों का बल लाए संग में
जय चिर मंगलमय हे!

तप से पावन स्वर्ण शुभ्र तन
सत्य-शुभ्र सत्कर्म वचन मन,
स्वर्ग धरा का करने आए
शुभ्र पुरुष, परिणय हे!

(हर्ष वादन)

स्त्री स्वर

पराधीन थी सदियों से जब स्वर्ण धरा यह
दैन्य दासता के श्रृंखल जकड़े थे तन को;
घोर अविद्या के तम से पीड़ित थे जनगण,
रूढ़ि रीति के प्रेत युद्ध करते थे मन में !

घेरे थे विश्वास अंध आकाश बेलि-से,
मुंड मुंड में थी विभक्त लघु लोक चेतना :
स्वार्थों में रत वर्ग, क्षुधित शोषित थी जनता,
पद लुंठित जीवन गौरव, मृत मानव आत्मा !
छाई थी जब विकट निराशा की निष्क्रियता,
वीर्यहीन थी भारत भू, भूपति विलास रत,—
प्रकट हुए थे लोक पुरुष तुम आत्म तेजमय
अंधकार को चीर हुआ हो नव स्वर्णोदय !

देख धरा को तमोग्रस्त, तुम करुणा विगलित,
जीवन रण में बने दिव्य सारथि फिर जन के,
महा जागरण मंत्र उच्चरित कर श्री मुख से
युग युग से निद्रित, जीवन्मृत महाजाति को
जागृत तुमने किया पुनः निज रहस शक्ति से !
स्वाभिमान भर जन में, क्षण में किया संगठित
नव्य राष्ट्र में उन्हें, स्वर्गवत् मातृभूमि के
प्रीति पाश में बाँध, विरत कर लघु स्वार्थों से !

महापुरुष, निज अभय दान से नव्य प्राण भर,
कंकालों को दिया मनुज का गौरव तुमने,
युग युग के घन अंधकार से बाहर लाकर
मृत्युभीत जनगण को दिखलाया प्रकाश नव !
और एक दिन प्राणोद्वेलित जन समुद्र को
मुक्त तिरंगे के नीचे समवेत कर पुनः
उन्हें अहिंसात्मक अद्भुत रण कौशल सिखला
छिन्न कर दिए तुमने युग के पाश पुरातन !
एक रात में मौन गगन हो उठा निनादित
अगणित कंठ रटित वन्देमातरम् मंत्र से !

धन्य सिद्ध जन नायक, तुम कर गए पराजित
चिर अजेय साम्राज्यवाद की लौह शक्ति को
क्षण में, सौम्य अहिंसा के मंगलमय बल से,—
प्रेमामृत से गरल घृणा का अपहृत करके !
सिन्धु तरंगों-से, गर्जन भर भारत के जन
आज तुम्हारा गौरव गाते हर्ष उच्छ्वसित !

(स्तवन वाद्य : समवेत गान)

जय जन भारत भाग्य विधाता,
लोक मुक्ति वर दाता !
प्रजातंत्र भारत के जनगण
गाते गौरव गाथा !

जय स्वतंत्रता के रण नायक,
महाजाति के नव उन्नायक,

भू गौरव, जन राष्ट्र विधायक
जय युग मन के ज्ञाता !

वीर, अहिंसा रत, व्रतधारी,
धीर, सत्य के असि पथ चारी,
दैन्य दासता के भय हारी
जय जीवन तम त्राता !

श्रद्धांजलि देते नर नारी
जय जय राष्ट्र पिता बलिहारी,
तपः पूत मन, जन हितकारी,
नव जीवन निर्माता !

(अभिवादन संगीत)

पुरुष स्वर

धन्य हुई यह मातृ धरा : युग लक्ष्मी फिर से
आज इसे अभिषेकित करती जनगण मन के
सिंहासन पर : अभिनंदित करती नव युग की
ऊषा, इसके गौरव दीपित रजत भाल पर
स्वर्ण शुभ्र किरणों का जगमग ज्योति मुकुट धर !

वृद्ध देश, हिम श्वेत श्मश्रु स्मित, शोभित जो नित
पुरुष पुरातन सा विकास प्रिय इस पृथ्वी पर,
संजीवन पा आज जनों का यौवन उसके
मूर्तिमान हो रहा पुनः नव लोक तंत्र में !
जय निनाद करता जन सागर उमड़ चतुर्दिक्

हर्ष तरंगित अपने शत शत शीश उठाए,
फहराता विजयी तिरंग ध्वज इंद्रधनुष सा
दिग् दिगंत में रंग छटाएं बरसा अगणित,—
पुष्प वृष्टि करते हों ज्यों नभ से फिर सुरगण !

महाभूमि यह, जिसके श्री विराट् प्रांगण में
प्रथम सभ्यता विहँसी भू पर भू प्रकाश सी,
जिसकी निभृत गुहाओं में पहिले मनुष्य को
आत्मोन्मेष हुआ : युग द्रष्टा ऋषिगण विचरे
स्वर्ग शिखा ले जहाँ सत्य की अमर खोज में :
जिसके ज्योतिर्मय मानस पलने में पलकर
धर्म ज्ञान संस्कृतियाँ शतशः फैलीं जग में,
जिसके दर्शन के स्फटिकोज्वल शुभ्र सौध में
स्वतः अवतरित हो मंगलमय पुरुष परात्पर
वास कर रहे मूर्त सत्य-से जन मन नभ में :
राम कृष्ण गौतम लोटे जिसकी शुचि रज पर,—
अभिवादन करते जनगण उस दिव्य भूमि का
आज पुनः दिक् प्रतिध्वनित उल्लसित स्वरों में—
वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम् !

तपोभूमि यह, राजतंत्र के युग में जिसने
राम राज्य का पूर्णादर्श दिया जगती को,
आज असंख्य विमुग्ध लोक नयनों से निर्मित
नव युग तोरण से प्रवेश कर रही पुनः वह
जन मन दीपित धरा चेतना के प्रांगण में,

लोक साम्य के द्यौ चुंबी प्रासाद में महत्,
सर्वभूत में फिर अपने को अनुभव करने !

स्वर्ग खंड यह, हाय, शंभु सा समाधिस्थ हो
विचरण करता रहा कहाँ तब मध्य युगों में
आत्मा के सोपानों में खो ऊर्ध्व, ऊर्ध्वतर
आत्मोल्लास प्रमत्त, जगत के प्रति विरक्त हो ?
जीवन मन के सकल कर्म व्यापार त्यागकर
यह निःस्पृह, निश्चेष्ट, शून्य, निःसंज्ञ बन गया
स्थाणु सदृश क्यों? बाह्य अचेतन स्थिति में अपनी
दैन्य दासता दुःख अविद्या के बंधन से
वेष्टित, सहता रहा आत्म पीड़न क्या केवल
जन भू का विष धारण करने नीलकंठ में ?

(काल यापन सूचक संगीत)

स्त्री स्वर

जाग रहा फिर राष्ट्रपिता के मन का भारत,
जाग रही फिर आत्मभूमि, अंतः प्रकाश से
अपने सँग सोई धरती को चेतन करने !
जन हिताय निर्माण कर रही वह नव जीवन,
लोक तंत्र की सुदृढ़ नींव रख अंतरैक्य पर,
स्वर्ग ज्योति चुंबी धर शिर पर कलश सत्य का !

विचरण करे प्रजा युग अभिनव जन भारत में
दूर दूर तक शिक्षा संस्कृति का प्रकाश भर,
सुख वैभव की स्वर्णिम किरणों से कर मंडित

झाड़ फूँस के भग्न घरौंदों को, युग युग से
दैन्य अविद्या के तम से जो त्रस्त ग्रस्त हैं!
नंगे भूखे रुग्ण अस्थि पंजर गत युग के
जहाँ रेंगता भार ढो रहे भू जीवन का
वर्ग सभ्यता के उस निचले नरक में, जहाँ
अन्न वस्त्र का घोर अभाव रहा अनादि से,
और सभ्यता संस्कृति की स्वर्ग-स्मित किरणें
पैठ न सकीं जहाँ, जीवन आह्लाद कभी भी
पहुँच नहीं पाया, जन मन का नीरव रोदन
मात्र हृदय संगीत रहा उच्छ्वसित, अतंद्रित!

आज तुम्हारा नव भारत निज रक्त दान से
पुण्य स्नात कर धरती के जन का विषण्ण मुख
सर्व प्रथम सौन्दर्य प्रसन्न करे मानव को!
उसकी चिर वसुधैव कुटुंबक मातृ क्रोड़ में
एक अहिंसक मानवता ले जन्म आत्म स्मित,
नई चेतना की प्रतिनिधि हो जो भू के हित!
त्रिविध मतों, वर्गों, राष्ट्रों में बिखरे जन को
मनुष्यत्व में बाँध नवल भू स्वर्ग रचे वह!
जीवन का ऐश्वर्य प्रेम आनंद उतर कर
अंतर्मानस से, महिमा मूर्तित हों जिसमें:
युद्ध दग्ध जन-भूपर व्यापक लोक तंत्र का
नव आदर्श करे स्थापित वह सर्व समन्वित,
अभिनव मानव लोक सृजन कर नर देवों हित!

युग युग तक गावें भारत जन एक कंठ हो
जनगण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता !

(स्तवन संगीत : भारत वंदना)

जयति जयति ज्योति भूमि,
जय भारत ज्योति देश !

ज्योति शिखर हिमवत् मन,
ज्योति द्रवित सुरसरि तन,
ज्योतित कर धरणि सकल
हरे विश्व तमस क्लेश !

उठो, उठो, नवल तरुण,
तिमिर चीर जगो अरुण
भेद भीति तजो, बँधो
लोक प्रीति में अशेष !

ज्योति पुरुष खड़े द्वार
तुम्हें फिर रहे पुकार,
स्वर्ग हव्य करो दान
उत्सुक जग के प्रदेश !

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

नग्न नृत्य करती थी हिंसा जब पृथ्वी पर
भौतिकता से जर्जर था जन भू का जीवन,

महानाश का पावक बरसाता था अंबर,
तुमुल रण ध्वनि से कँपता था दीर्ण दिगंतर !

राष्ट्रों के कटु स्वार्थों से, स्पर्धा लिप्सा से
दुर्वह था जब जन धरणी में जीवन यापन,
घोर अनैतिकता छाई थी मनोजगत् में,
बिखर रहे थे शिखर सनातन आदर्शों के,—

सदाचार की रजत शिखा ले, आए थे तुम
युग प्रतीक बन भारतीय चेतना के पुनः,
सत्य साम्य से मार्ग प्रदर्शन करने जन का,
अमृत स्पर्श से आहत जगती के व्रण भरने,—
मधुर अहिंसा का संदेश सुनाने भू को !
धन्य मर्त्य के अमर पांथ, तुम निखिल धरा को
बाँध गए नव मनुष्यत्व के स्वर्णपाश में !

(आवाहन संगीत : समवेत गान)

शुभ्र चरण धरो पांथ,
शुभ्र चरण धरो !
अंकित कर ज्योति चिह्न
जीवन तम हरो !

विश्व वारि हैं अशांत
जन जीवन ध्येय-भ्रांत,
कर्णधार बनो, धीर,
क्षुब्ध नीर तरो !

आर पार अंधकार,
रुद्ध आज हृदय द्वार,
व्यथा भार हरो देव,
भेद अमिट भरो !

मंगलमय तुम उदार,
सुनो आर्त जन पुकार,
पावक की अंजलि भर
वितरण हवि करो !

(तान पूरे के स्वर)

स्त्री स्वर

धन्य हुई जन धरणी यह, अवतरित हुए तुम
मर्त्यलोक में फिर देवोपम गरिमा लेकर,
विचरे मेरु शिखर-से नव किरणों से भूषित
शुभ्र काय मन, नव्य चेतना की ज्वाला को
जन मन में दीपित करने, करुणा प्रेरित हो !

बाँध गए नव संस्कृति में तुम विश्व जनों को
मनुष्यता का मुख नव महिमा से मंडित कर,
नर चरित्र का रूपांतर कर, जन गण मन को
श्रद्धा से पावन, धरणी को स्वर्ग स्नात कर !

किन शब्दों में श्रद्धांजलि दें आज हृदय की,
देव, महामानव, हे राष्ट्र पिता हम तुमको !

वाष्पाकुल हैं नयन, हर्ष, श्रद्धा गद्गद स्वर,
प्रीति प्रणत शत शत प्रणाम हों स्वीकृत जन के !

(स्तवन संगीत : समवेत गान)

जय नव मानव, जय भव मानव !
स्वर्ग दूत नव मानवता के,
विचरो ज्योति शिखा ले अभिनव !

प्रीति पाश में बाँधो जन मन,
श्रद्धा पावन हो जन जीवन,
बनो शुभ्र विश्वास सेतु तुम,
शांत सकल हों भव के विप्लव !

स्वर्ग हृदय हो जन में स्पंदित
स्वर्ण चेतना से भू मंडित,
अमृत स्पर्श से हरो मृत्यु तम,
जन मंगल हो, जीवन उत्सव !

शुभ्र सत्य का हो जन मन पथ,
शुभ्र अहिंसा का जीवन व्रत,
विश्व ग्लानि में नव प्रकाश बन
निखरो, शुभ्र पुरुष, युग संभव !

२ अक्तूबर १९५०)

विद्युत् वसना

विद्युत् वसना स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है : ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता। इस युग में जन स्वतंत्रता की उपयोगिता लोक एकता तथा विश्व मानवता के निर्माण ही में चरितार्थ हो सकती है : यही इस रूपक का संदेश है।

स्त्री पुरुष स्वर
विद्युत् वसना
जनगण

(मेघ घोष के साथ तुमुल वाद्य ध्वनि)

पुरुष स्वर

यह विद्युत् वसना का रूपक है सांकेतिक,
नव युग का संदेश भरा जिसमें ज्योतिर्मय,
स्वतंत्रता की अमृत चेतना, जो मेघों के
रंध्रों से है फूट रही जन मनोगगन में,
आज उतरने को वह आतुर, जन धरणी के
जीवन के प्रांगण में, विद्युत् निर्झरिणी सी,—
अंधकार से भरे गह्वरों को पृथ्वी के
नव प्रकाश रेखाओं से आंदोलित करने !

आज टूटने को है युग की दुर्धर ज्वाला
जन मन के शृंगों पर पावक के प्रवाह सी,
जाग रहे भूरज में सोए अग्नि बीज फिर
अभिनव इच्छाओं के ज्योति प्ररोहों में हँस !
उद्वेलित धरणी का उर, युग की आभा का
अभिवादन करने को, जय नादों से मुखरित !

(जय निनाद)

अपनी शुभ्र छटा के अंचल में लपेट कर
अमर सँदेशा लाई है स्वाधीन चेतना
ज्वलित स्वर्ण शोभा से मंडित, जनगण के हित,—
सावधान हो सुनें मर्त्य भू के वासी जन !

(उद्बोधन वाद्य संगीत के साथ दूर से आते हुए करुण समवेत गीत के स्वर)

गीत

घोर तमिस्रा छाई,
कौन सँदेशा लाई ?

घुमड़ घटाएँ घिरतीं प्रतिक्षण
गगन क्रुद्ध हो भरता गर्जन,
अंतरिक्ष के उर में किसने
रक्त ज्वाल सुलगाई ?

झिल्ली क्या बज उठती झन झन
जगा गुहाओं में युग रोदन,
गूढ़ घाटियों में जीवन की
अँधियाली गहराई !

बिजली रह रह करती नर्तन
ज्योति अंध कर जन के लोचन,
फिरतीं उर में आवेशों की
उठ काली परछाईं !

बदल रहे जन, बदल रहा मन,
'बदल रहा युग औ' युग जीवन,
प्रलय सृजन की उन्मद बेला
अब अकूल लहराई !

(तानपूरे के अशांत स्वर)

स्त्री स्वर

हर्ष रुदन करता धरती का कातर अंतर,
उमड़ रहे हैं महा बलाहक सृजन छटा स्मित,
कंकालों की पग ध्वनि से कँप उठता भू तल,
जीर्ण अस्थि पंजर बढ़ते हैं विजय ध्वजा ले !

महानाश के खँडहर पर जन मन उन्मादिनि
नाच रही है विद्युत् वसना लोक चेतना
अट्टहास भर, शत स्फुलिंग बरसा अंबर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहों में रोमांचित !
गाती है उन्मत्त गीत वह मंद्र स्तनित भर !

(मेघ गर्जन तथा मंद्र गभीर वाद्य ध्वनि)

विद्युत् वसना

जन आकांक्षा के शिखरों पर
पग धर में युग तांडव करती,
चिर अंधकार से ज्योति खींच
युग अंधकार का भय हरती !

मैं वाष्प धूम के अणुओं को
निज स्पर्श ज्वाल से चटकाती,
शत बाधा बंधन के श्रृंखल
उन्मत्त हर्ष से तड़काती

मैं प्रलय ज्वार सी उठती हूँ
धरती स्वतंत्रता में न्हाती,
मैं नाश सृजन के पंखों में
आँधी सी उड़, आती जाती!

(झंझा सूचक ध्वनि प्रभाव)

जन स्वर

तुम आओ, शत बलिदान यहाँ
अभिवादन के हित तत्पर हैं,
तुम आओ, शत शत प्राण यहाँ
अभिलाषाओं से जर्जर हैं!

तुम उतरो, नव आदर्शों के
शिखरों पर किरणें बरसाओ,
उतरो, उर्वर तलहटियों में
फिर ज्योति बीज नव बिखराओ

आओ हे, तुम जन संस्कृति के
पथ को दिग् विस्तृत कर जाओ,
युग युग से पंक भरी भू को
सौन्दर्य ज्वार में नहलाओ!

विद्युत् वसना

मदिरा की ज्वाला सी मादक
मैं जाग्रत् विस्मृति लाती हूँ,
महलों को खँडहर, खँडहर को
फिर उठते महल बनाती हूँ!

पतझर के वन को मांसल कर
नव रूप रंग भर जाती हूँ
मूकों को कर वाचाल,
पंगुओं को चढ़ना सिखलाती हूँ!

जन स्वर

तुम आओ, मन के धनी यहाँ
तन के भूखे करते स्वागत,
तुम देखो, युग युग से सोए
रज के सपने होते जाग्रत्!

देखो हे, तन मन के शोषित
अब तोड़ रहे दुख के बंधन,
नव मानवता में जाग रहे
मिट्टी के पुतले नव चेतन!

(वाद्य स्वर परिवर्तन)

पुरुष स्वर

अंधकार बढ़ता जाता है, युग प्रभात है
होने को निश्चय! सहसा मर्मर हर्‌हर् ध्वनि
फूट पड़ी है नग्न डालियों में जन वन की!

मलय पवन तूफ़ान बन रहा! सर् मर् चर् मर्
टूट रहे हैं जीर्ण खोखले वृक्ष ठूंठ अब
भूमिसात् हो! नाच रहे झर झर कर पत्ते
शुष्क पीत मृत, घूम घूम शत आवर्तों में!
धूलि कणों के भँवर उठ रहे, लोट लोट कर
धूसर भुजगों-से झंझा कंपित धरती पर!

(ध्वनि प्रभाव)

अंधड़ आया, अंधड़ आया, घोर बवंडर!
कोलाहल से बधिर हो रहे विश्व के श्रवण!
भूमि कंप यह, हिल हिल उठती भू की जड़ता,
काँप रहे पर्वत, टकराते शृंग अग्नि मुख!
स्फीत तरंगों पर चढ़ रहीं तरंगें उन्मद,
फेनों के क्षण-अट्टहास्य में उबल रहा जल!
आधि व्याधि कटु दैन्य दुःख का फटता कर्दम,
टूट कगार रहे, छितराते बालू के कण!

धूल धुंध! उड़ रहे युगों के द्वन्द्व पराजय,
हानि लाभ, शत जन्म मरण! छा गया चतुर्दिक्
मिट्टी का बादल! धरती हो नई बन रही
नाच नाच नव युग परिवर्तन के इंगित पर!
निखर रही हैं नई चोटियाँ, नई तलहटियाँ
दिग् विस्तृत, जीवन किटाणुओं से नव उर्वर!

(युग परिवर्तन सूचक घोर तुमुल संगीत : दूर से आते हुए समवेत स्वर)

दिग् हसने, अयि विद्युत् वसने!
अट्टहास से चकित दिगंतर,
शत प्रलयंकर दशने!
विद्युत् वसने!
अग्नि वृष्टि करता युग अंबर,
रक्त तरंगित जन मन सागर,
नाच रही तुम निर्मम तांडव
जन मद झंकृत रसने!
विद्युत् वसने!
स्वार्थों में छिड़ रहा तुमुल रण
आज खुल रहे युग युग के व्रण,
उमड़ उठा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने!
विद्युत् वसने!

(तानपूरे के स्वर)

विद्युत् वसना

प्राणों के नीरद से आवृत
जगती का अंबर दिशा हीन,
मैं मुक्त चेतना हूँ उसकी
संघर्षों से दीपित नवीन!

वह सतरँग शोभा में हँसता
शत आकांक्षाओं से मंथित,
नव जीवन की हरियाली में
झरता रहता करुणा विगलित !

मैं उसकी आभा की अप्सरि
युग शिखरों पर नर्तन करती,
बजती चल पावक की पायल
जन मन में रण गर्जन भरती !

मैं अग्नि बीज बोती भास्वर
उपजाती लपटों की खेती,
मैं महा प्रलय के पंखों की
छाया में सर्जन को सेती !

(मेघ गर्जन, झंझा का शब्द और कोलाहल)

स्त्री स्वर

हहर रही है जन स्वतंत्रता की खर झंझा,
बीज बो रही जो पतझर में नव वसंत के :
क्या है इसका ध्येय ? गरजती हुई घटा यह
सतरंगी ले विजय ध्वजा किस मनोल्लास की
उमड़ घुमड़ घिर रही जनों के मनो गगन में ?
कौन महत् उद्देश्य, कौन प्रेरणा हृदय की,
जीवन की कल्पना कौन, अगणित जनगण को
एक प्राण कर चला रही है आज अतंद्रित ?

बढ़ते अडिग चरण असंख्य, निर्भय अमोघ, दृढ़,
पदाघात से कंपित कर धरणी का प्रांगण,—
कँप कँप उठती युग युग की शंका, कायरता,
हिल हिल पड़ते मनोलोक, गत आदर्शों के
शिखर बिखरते, धँसतीं भू में रूढ़ि रीतियाँ
शत कृमि कीटों से जर्जर, स्वार्थों से स्थापित !

(उत्तेजना द्योतक ध्वनि प्रभाव)

दुर्निवार कामना ! कौन सी महाशक्ति यह
जन समुद्र को है ढकेलती युग तोरण से
नव प्रभात के सद्य प्रज्वलित नव प्रदेश में ?—
जीवन का सौन्दर्य, धरा का स्वर्णिम वैभव
जहाँ हँस रहा दिग् दिगंत में जन जन के हित !
कौन दिशा है वह ? मंज़िल है कौन वह नई ?
क्या आशय है लोक जागरण, लोक मुक्ति का ?
गाओ युग की वीणे, पावक के तारों से
नव ज्योतिर्मय, शांत, मधुर, स्वर संगति बरसा !

(मंगल वादन : आकाश वाणी)

इस युग की स्वाधीन चेतना अभय बढ़ रही
लोक एकता, विश्व एकता के मंदिर को !
साधन केवल जन स्वतंत्रता,—मनुज एकता
लोक साम्य औ' विश्व प्रेम ही प्राप्य ध्येय है !
जनता का बल युग संबल है ! मनुष्यत्व ही
जन बल की महिमा, जन गौरव का किरीट है !

जन स्वतंत्रता नहीं,—लौह संगठित जनों की
अंतर् निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है!
बोलो जनता की जय, नव मानवता की जय!

(हर्ष वाद्य ध्वनि : समवेत गीत)

बरसो हे जन मन के बादल!
नव जीवन की हरियाली में
हरसो हे नव स्वर्णिम उज्वल!

उमड़ो, श्यामल दृग हो अंबर
घुमड़ो, विद्युत् प्रभ हो अंतर,
गरजो हे, जय हर्षध्वनि भर
नव प्ररोह पुलकित हो भूतल!

सतरँग विजय ध्वजा धर छहरो
भू को बाँहों में भर घहरो,
श्री शोभा के शस्य-हास्य से
सरसे जन भू में जन मंगल!

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

मत्त लास्य कर रही गगन में विद्युत् हासिनि
मत्त हास्य भर रही हृदय में अंतर्वासिनि,
उतर रही है ज्योति जाह्नवी नव्य चेतना
उभर रहा धरती का मन आवर्त शिखर बन,—
स्वागत देने नव्य प्रभा को,
धारण करने दिव्य विभा को!

(अभिवादन वाद्य संगीत : जन गीत)

ज्योति शिखावाही (जन)
प्रीति शिखावाही !

बादल दल गए बिखर
नवल क्षितिज रहा निखर,
विहँस उठा हृदय शिखर,
ऊषा मुसकाई !

ज्वाला के बढ़ते पग
हँसता जन जीवन मग,
जग का प्रांगण जगमग
देता दिखलाई !

अंधकार रहा भाग, रहा भाग,
ज्योतिर्मय उठे जाग, उठे जाग,
मृत्योर्माऽमृतं गमय
जन चिर अनुयायी !

१५ अगस्त' ५०)

शरद चेतना

शरद चेतना प्रकृति सौन्दर्य का कल्पना प्रधान रूपक है। इसमें धरती की ऋतुएं, हेमंत, शिशिर, वसंत आदि, आकाश-वासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती हैं, जो पृथ्वी पर उतर कर चारों ओर श्री सुख शांति का संचार करती है। फूल, मुकुल आदि धरती के चराचर आनंद उत्सव मनाते हैं।

वाचक वाचिका
वर्षा हेमंत
ग्रीष्म, वसंत, शिशिर
प्रकृति, फूल

(वाद्य संगीत)

(आकाश : गीत)

शरद चेतना !
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित
शुचि हिम हसना !

चंद्र वदन, कुन्द दशन,
उडु स्मित सर उर चेतन,
स्वप्न पलक पद्म नयन,
निः स्वर चरणा !

सौम्य स्निग्ध वयस कांति,
मूर्तिमती खड़ी शांति,
मिटी विश्व जनित क्लांति,
भू तम अशना !

स्वर्ग स्नात भू रज तन,
कौश शुभ्र काँस वसन,
निखर उठा उर यौवन,
अंतर्वंचना !

घुले निखिल रूप रंग,
धुले मधुर प्राण अंग,
निर्मल जीवन तरंग,
कल्मष शमना !

गंध अनिल रजत श्वास,
तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरों पर ज्योति लास,
सारस रसना !

वाचक

अब वर्षा का व्योम, बरस रिमझिम झड़ियों में,
कोमल हरियाली में हँस, बिछ गया धरा पर,
जो गेहूँ के नवल प्ररोहों में रोमांचित
कँप कँप उठती भू छायातप की लहरों में !

रँग रँग के फूलों की हँसमुख उड़ती चितवन
इंद्रधनुष छायाएँ बरसातीं दिशि दिशि में,
धरती की सोंधी सुगंध से जिनकी सौरभ
प्राण शक्ति से मर्म भावना सी घुल मिल कर
समुच्छ्वसित कर देती मुग्ध हृदय को बरबस !

स्वर्ग कणों के शालि झूम झुक नयन लुभाते
सहज सुहाते स्वच्छ रुपहले काँसों के वन,
मलिन वासना धुल सी गई सरित धारा की,
सरसी जल में घुल सी गई नवल उज्वलता !

कुमुदों में केन्द्रित हो निशि का अपलक विस्मय
कमलों में खुल सौम्य दिवस के अंतर्लोचन,
फुल्ल चंद्र का, स्निग्ध सूर्य का स्वागत करते !
चल खंजन नयनों से, कल चातक पुकार से
भू का सद्यः स्नात मनोरथ प्रकट हो रहा !

मौन मधुर लग रहा धूप का सुघर धुला मुख
अंगों से लावण्य फूट सा पड़ता निश्छल,
डूब भावना में नव यौवन की निर्ममता
कोमल सी पड़ गई,--मध्य वय के आग्रह से
मार्दवता आ गई मनोरम मातृ प्रकृति में !

वाचिका

चिर रहस्यमय ताराओं का छाया पथ नभ
निज असंख्य नयनों के विस्मय से हरता मन,
स्वप्नों के स्मित ज्योति प्ररोहों से दिक् पुलकित
व्योम हँस रहा दीप्त दिवौषधियों के वन सा !

निखर उठी नीलिमा, नयनिमा सी अनंत की,
निखर उठी नीहार कांति निर्वाक् शांति में,
वृष्टि धौत नीलिमा रहस आभा से गुंफित
महाजागरण सी सोई स्मित अंतरिक्ष में
निबिड़ अकंपित जल सी निस्तल निश्चेतन की
महा चेतना के पावक से लगती गर्भित !

वाचक

चंद्रकला का मुकुट धरे निज ज्योति भाल पर
हीरक कनियों की शत ज्वालाओं से जगमग,
तारक लड़ियाँ गूँथ नील लहरी वेणी में
रजत वाष्प जलदों के सतरँग पंख खोल स्मित,
नवल शारदीया, सुंदर सुरबाला सी हँस,
उतर रही, स्वर्गंगा सी साकार गगन से!

व्योम वासिनी, सूक्ष्म स्वप्न देही आभा वह,
—दिव्य अदिति सी अंतर्मन के रजत गगन में,—
उतर रही भू पलकों पर अनिमेष स्वप्न सी
शब्द स्वर रहित अंतरतम की तन्मय लय में!
ज्योति द्रवित वह, जिसके स्वप्निल गीलेपन से
भींग रहे मन प्राण मौन शोभा में मज्जित,
अमृत चेतना वह, जिसके अंतः प्रवाह में
डूब रहे उर के तट, भाव तरंग ध्वनित हो,
नीरव कलरव से गुंजित हर्षातिरेक के!

(वाद्य संगीत)

वाचिका

फूलों की पंखड़ियो, कोमल रँग बरसाओ,
लोल लहरियो, सरसी उर में लय हो जाओ,
तरु मर्मर, निज अस्फुट कंपन में खो जाओ,
ताराओं की पलको, झिलमिल कर सो जाओ!
प्रिय चकोर, तुम पृथ्वी के अँगार चुग जाओ,
शुभ्र हंस पंखो, उड़ान बनकर रह जाओ—

शरद चंदिरा उतर रही धीरे धरती पर
भारहीन सुकुमार अंगभंगी में ओझल,
निज अदृश्य पग धरती पंखुरियों, लहरों पर,
स्वप्न स्पर्श सी पलकों पर, स्मिति सी अधरों पर !
देखो, फूलों पर हँसते अब रजत तुहिन कण
लहरों के अधरों को चूम रहे स्मित उड़गण,
झलक उठे पत्तों के करतल में मुक्ताकण,
ज्योत्स्ना के पद चिह्नों से अब अंकित भूतल !

भौतिक ज्योति नहीं है केवल शरद चाँदनी,
आत्म लीन वह अमर चेतना स्वर्ग लोक की,
अतिक्रम कर सब दिशा काल, तन मन के बंधन,
आत्मोल्लास प्रदीप्त, हुई परिव्याप्त चतुर्दिक् !
मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलकों में ज्यों
प्रथम बार मुसकाया सद्योज्वल विस्मय में
नहीं भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अंचल की पावन छाया में आओ,
फूलों की मृदु पलको, स्वप्नों से भर जाओ,
लोल लहरियो, नव लीला लावण्य दिखाओ !

वाचक

स्यात् हृदय की वीणा होती, तार प्रणय के,
कोमलता का स्पर्श, रुपहली गूंजों में जग
सुंदरता झंकृत हो उठती निःस्वर लय में,
स्वर्गिक स्वर संगति बन उर के श्रवणों के हित,

मनोनयन तब कहीं देख पाते उस छबि को
शरद चंद्रिका में अरूप साकार हुई जो,
प्रीति ज्योति सी, स्वप्नों के अंगों में मूर्तित,
स्वर्ग धरा के भावों की सुषमा से भूषित !

(वाद्य संगीत)

वाचिका

परिक्रमा करतीं भू ऋतुएँ शरद विभा की,
बारी बारी से हेमंत शिशिर वसंत आ,
ग्रीष्म और वर्षा, रंगों से, धूप छाँह से
जल बूँदों से, हिम फुहार से करते स्वागत,
पिक चातक के, नृत्य मयूरों के कंठों से
अभिनंदन गा, शत नव लोध्र, कमल दल बरसा !

वाचक

सर्व प्रथम हेमंत कर रहा आत्म निवेदन,
भरा झुर्रियों से आनन, सकुचाया सा मन
काँप रहे मृदु अधर, वाष्प से आर्द्र हैं नयन,
घने कुहासे में सा लिपटा उसका जीवन !
ठंढा हो पड़ गया सकल उत्साह, क्लांत मन,—
ठिठका सा लगता नभ, ठिठुरा सा भू प्रांगण !

(हेमंत का गीत)

जीर्ण पलित पीत पात,
कंपित हेमंत गात !

हँस धवल पक्व केश,
क्षीण काय, सौम्य वेश,
मंथर गति, मंद कांति,
नतदृग मुख वारिजात !

रजत धूम भरे अंग,
फूलों के उड़े रंग,
सरसि में न अब तरंग,
शीत भीत श्वास वात !

मौन स्वल्प दिवस मान,
रवि में ज्यों चंद्र भान,
मुक्त अब न विहग गान,
अश्रु सजल हिम प्रभात !

सिमटे मन देह प्राण,
अधरों का राग म्लान,
प्राणों के निकट प्राण
दीर्घ स्वप्न भरी रात !

(वाद्य संगीत)

वाचिका

छोड़ श्वास फूत्कार धूलि के साँप नचाता
जरा जीर्ण जगती के पीले पात उड़ाता,
ध्वंस भ्रंश करता सा क्रुद्ध शिशिर अब आता
झंझा पर चढ़, थर थर कँपता, ओठ चबाता !

सी सी सीटी बजा, रुदन में भरता गायन,
समदर्शिनी शरद का वह करता अभिवादन !

शिशिर का गीत

सन् सन् बहता समीर,
बेधते सहस्र तीर !
शिशिर सीत्कार भीत
कँपता रज का शरीर !

झरत मर शीर्ण पत्र,
गिरते कँप विटप छत्र,
विचर रहा दुर्निवार
क्रांति दूत सा अधीर !

बो रहा प्रचंड बीज
जड़ता पर खीझ खीझ,
जीवन के नव प्ररोह
विहँसें भू गर्भ चीर !

सिहर रहे तृण तरु खग,
सिहर रहा धूसर जग,
सिहर उठे भूधर पग,
सिहर रहा लहर नीर !

नग्न भग्न विश्व डाल,
सृजन ध्वंस रे कराल,
सुलगें स्वर्णिम प्रवाल
मिटे निखिल दैन्य पीर !

वाचक

नव वसंत आता अब अधरों में भर गुंजन,
सौरभ से पुलकित मन, फूलों से रंजित तन,
नव भू यौवन सा, स्वप्नों से अपलक लोचन,
कुहू कुहू गा, प्राणों का सुख करता वर्षण!
शरद चेतना में परिणत अब रंगों के क्षण
फूल बने फल, पर्ण काँस, परभृत मरालगण !

(वसंत का गीत)

नव वसंत आया !
कोयल ने उल्लसित कंठ से
अभिवादन गाया !

रंगों से भर उर की डाली
अधर पल्लवों में रच लाली,
पंखड़ियों के पंख खोल स्मित
गृह वन में छाया !

सौरभ की चल अलकें मादन,
फूल धूलि में लिपटा मृदु तन,
नव किशोर वय, क्रीड़ा चंचल,
अग जग को भाया !

मधुपों के सँग कर मधु गुंजन
मंजरियों में पिरो स्वर्णकण,
दिशि दिशि में नव फूल वाण भर
मन्मथ मुसकाया !

धरा पुत्र यह, फूलों के अँग
प्राणों में इच्छाओं के रँग,
जीवन के श्री सुख वैभव में
ऋतुपति कहलाया !

वाचक

अह, निदाघ बरसाता चितवन के पावक कण,
जग के प्राण तपाता, झुलसाता भू जीवन !
भू लुंठित छाया, कुम्हलाया लतिका सा तन,
प्यासा जल अब, उड़ा भाप बनकर गीलापन;
प्रतिक्षण तप कर, जीवन से कर कटु संघर्षण
समदर्शी बन ग्रीष्म शरद का करता वंदन !

(ग्रीष्म का गीत)

तरुण तापस वीर,
उग्ररूप, प्रचंड त्रिनयन सा
निदाघ गभीर !

धूलि से धूसर जटा घन,
मौन वचन, मुंदे विलोचन,
रुद्ध श्वास, सुखद तृणासन,
वस्त्र विरत शरीर !

तप रहे क्या व्योम भूतल
वह्नि लगती दाह शीतल,
तप्त कांचन देह निश्चल
ध्यान में रत धीर !

दौड़ता पागल प्रभंजन
अग्नि के बरसा ज्वलित कण,
म्लान फूलों की लता तन,
शेष तट अब नीर !

रुद्र चक्षु कराल अंबर
कृश सरित, पंकिल सरोवर,
तड़पते खग मृग, अगोचर
चुभ गया हो तीर !

वाचक

लो, वर्षा की घनश्यामल वेणी लहराई,
धरती को रोमांच हुआ, हरियाली छाई !
प्राणों में अब जगा गहन जीवन उद्वेलन,
अंबर में गर्जन, दिशि दिशि में विद्युत् नर्तन !
इंद्रधनुष में हँसा गगन का सूना प्रांगण
बहु भार में खुला रंग चंचल भू जीवन !
स्निग्ध शरद का आँगन धो, निज दृग का अंजन,
सोन बलाक स्वरों में वर्षा करती वंदन !

वर्षा का गीत

नीलांजन नयना,
उन्मद सिन्धु सुता वर्षा यह
चातक प्रिय वयना !

नभ में श्यामल कुंतल छहरा
क्षिति में चल हरितांचल फहरा,
लेटी क्षितिज तले, अर्धोत्थित
शैल माल जघना !

इच्छाएँ करतीं उर मंथन
चिर अतृप्ति भरती गुरु गर्जन,
मुक्त विहँसती मत्त यौवना
स्फुरित तड़ित दशना !

रजत विन्दु चल नूपुर झंकृत
मंद्र मुरज रव नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती बर्हस्मित
कल बलाक रसना !

वकुल मुकुल से कबरी गुंफित
श्वास केतकी रज से सुरभित,
भू नभ को बाँहों में बाँधे
इंद्रधनुष वसना !

वाचिका

धरती की ऋतुएँ मिलकर करतीं अभिवादन
चंद्रमुखी नभ की ऋतु का अनिमेष नयन हो,
विहगों के स्वर, सर के कमल, घनों का वादन,
भू के रंगों का वैभव अर्पण कर उसको !

रक्त जपा फूलों से रँगकर उसके पदतल
आम्र मौर का मुकुट, कुँई के कर्ण फूल रच,
हर सिंगार वेणी, वेला कलियों की माला
मधुपों से गुंजित कदंव मेखला वाँधकर,
करतीं मानस पूजन वे स्वर्गीय विभा का !
हंसों के चल पंखों से झल मंद मृदु व्यजन,
ज्योतिरिंगणों से जगमग द्युति नीराजन कर
मधुर स्तवन गातीं वे ऋतुओं की रानी का,--
किरणोज्वल लहरों के पायल बजा रजत रव,
शिखी पिच्छस्मित परिक्रमा कर नृत्य मत्त हो !

शरद का गीत

अब शुभ्र गगन में शुभ्र चंद्र
नव कुंद धवल तारावलि री,
अब शुभ्र अवनि में शुभ्र सरसि,
सरसी में श्वेत कमल दल री !
भू वासिनि ऋतुएँ अन्य सभी,
तुम नभ वासिनि चिर निर्मल री,
वे धरती की रज में लिपटीं,
तुम स्वर्गंगा सी उज्वल री !
अब काँस हास से श्वेत धरा,
सरसिज से सित सरिता जल री,
चल हंस पाँति से शुभ्र पवन,
शशि मुख से स्मित नभ मंडल री!

बेला जूही के फूल धवल,
हिम धवल कुंद कलियाँ कल री,
तुम चंद्र शिखा की स्नेह विभा
जो स्वर्ण शुभ्र चिर शीतल री !

आती जातीं ऋतुएँ जग में
कर जातीं भू उर चंचल री,
तुम शरद चेतना स्वर्गोज्वल
बरसातीं नित जन मंगल री !
वे जीवन रंगों का मोहक
फैलातीं छाया अंचल री,
तुम प्रीति द्रवित स्वर्गाभा सी
पावन कर जाती भूतल री !
तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि,
अंतः शोभा मयि निश्छल री,
अस्पृश्य अदृश्य विभा उर की,
वे रूपमयी रज मांसल री !

वाचक

रजत नील जल सी अंबर सरसी की निर्मल
जिसमें स्वप्नों की अप्सरियाँ तिरती रहतीं,
अपनी ही आभा में ओझल शरद चंद्रिका
कोमलता सी, तन्मयता सी, दिव्य दया सी
विचर रही धरती पर सस्मित स्वप्न चरण धर,
शोभा के स्वर्गीय ज्वार में डूबा दृष्टि तट।

मुग्ध धरा उर के भावों-से फूलों के शिशु
रँग रँग की स्मिति बरसा, गाते शरद वंदना !

फूलों का गीत

आओ हे हँसमुख फूलो, हिलमिल कर हम सब गावें,
शरद चेतना के आँगन में उत्सव मधुर मनावें !
रंग पँखड़ियों के पर फैला अंबर में उड़ जावें,
रजत सुरभि के अलक जाल में मारुत को उलझावें !
अपलक चितवन के स्मित चंचल बंदनवार बँधावें
जन भू के पथ पर हँस हँस शत इंद्रचाप बरसावें !
तुहिनों के मोती किरणों में पोकर हार बनावें,
डाल डाल पर उर स्वप्नों के मोहक जाल बिछावें !
फूलों का तन फूलों की बाँहों में भर सुख पावें,
स्नेही मधुपों की मधु गुंजन सुनकर प्राण जुड़ावें !

वाचिका

डूब रहा नभ, डूब रहीं दिशि, डूब रही भू,
एक अनिर्वचनीय महत् आनंद में अमित,
द्रवित हो गईं निखिल रूप रेखा धरणी की,
लीन हो गईं अखिल असंगतियाँ जड़ता की,
विस्मय से अभिभूत प्रकृति के उर से उठता
जिज्ञासा से भरा मौन संगीत गगन को !

प्रकृति का गीत

क्यों हँसते रहते फूल मधुर, क्यों लहरें नित नाचा करतीं,
क्यों इंद्रधनुष छायांचल में किरणें छिप छिप सतरँग भरतीं ?

क्यों उषा लालिमा मौन सलज नव मुग्धा सी मन को हरती,
क्यों कुहू कुहू गाती रहती कोयल चिर मर्म व्यथा सहती?
क्यों अपलक तकते रे तारे, सपने देखा करती धरती,
क्यों शशि को बाँहों में भरने सागर वेला उठती गिरतीं ?
निज सुख दुख की ही चिन्ता में क्यों डूबी रहती है जगती
क्यों स्वप्नों के पर खोल न वह प्रिय तितली सी उड़ती फिरती?
जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती में फैली रहती
तुम उर का प्यार उड़ेल उसे धो डालो हे, ज्योत्स्ना कहती!

वाचक

अंचल पकड़ प्रकृति का गाते नवल मुकुल दल
अर्ध खुले विस्मित नयनों से प्रथम बार ज्यों
निरख धरा की दुग्ध स्नात अंतःश्री उज्वल !
हरित गौर भू उर पर सोया रजत नील नभ
स्वप्न देखता हो विराट् सौन्दर्य के अमर !

मुकुलों का गीत

हास लास हो हुलास,
सुरभित हो साँस साँस !

चाँदनी खिली अपार
स्वप्नों का उठा ज्वार,
मौन मुग्ध आर पार
शोभा श्री का विलास !

प्रकृति कर रही विहार
उमड़ रहा अतल प्यार,
जगत रे नहीं असार
सुंदरता आस पास !

चंद्रमुख रहा निहार,
सिन्धु उर रहा पुकार,
प्राणों का यह निखार
पांथ, अब न रह उदास !

खोल रुद्ध हृदय द्वार,
गूंज उठे मूक तार,
जीवन रे वृथा भार
अंतर में जो न प्यास !

उच्च हो सदैव ध्येय
मनः शक्ति हो अजेय,
शांति सौख्य अपरिमेय,
वरद शरद भू निवास।

वाचिका

दुग्ध फेन सा, म्लान कमल सा, स्फटिक खंड सा
पावस का शशि उज्वल किरणों से मंडित हो
दमक उठा अब रजत वह्नि के ज्योति कुंड सा !
निखिल सृष्टि की शोभा का प्रतिमान रूप सा,
विश्व प्रकृति के चंद्रानन सा चारु सुधाकर

शरद चेतना के प्रेमोज्वल आर्द्र हृदय सा
बरसा रहा धरा पर स्नेह सुधा के निर्झर!
शांत गगन अब, सौम्य प्रकृति, स्मित स्निग्ध दिशाएं,
मुग्ध चराचर चंद्र वंदना करते नीरव!

(वंदना गीत)

बरसो ज्योतिर्धाराओं में
बरसो धरती के मानस घन,
अब निर्मल नभ, अब धुला धरा मुख,
खुले सरसि के कमल नयन!

मिट्टी के प्राण प्ररोह जगे,
सात्विक लगते काँसों के वन,
अब हंसों के पंखों में उड़
हँसता धरती का उर चेतन!

बरसाओ हे नव श्री शोभा
हो स्वप्नों से स्मित भू प्रांगण,
लहरों में झलके रजत ज्वाल
फूलों की पलकों में हिमकण!

बरसो हे स्वर्ण सुधा के घट,
बरसो हे रजत विभा के घन,
बरसो भू मानस के प्रतीक,
चेतना सिक्त हों सब भूजन!

१ सितम्बर १९५१)